* श्रीगणेशाय नमः *

लघुपाराशरी

* उडुदाय प्रदीपाभिधा *

भाषा टीका सहित ।

टीकाकार :—

पं० बद्रीप्रसाद शर्मा, "प्रेम"
व्रजभूमि, लोहवन-मथुरा ।



प्रकाशक :—

फर्म--रघुनाथदास पुरुषोत्तमदास, अग्रवाल,
बुकसेलर्स एण्ड पब्लिशर्स,

छत्ता बाजार-मथुरा ।



प्रथम बार
२०००

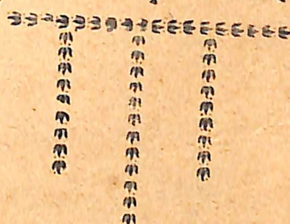
मूल्य ।=)

सिर्फ टाइटिल—"हरीहर इलैक्ट्रिक मशीन प्रेस", मथुरा में छपा ।

* श्रीगणेशाय नमः *

लघुपाराशरी

उडुदायप्रदीपाभिधा



टीकाकार:—

पं० बद्रीप्रसाद 'प्रेम'

ब्रजभूमि, लोहवन मथुरा

प्रकाशक—

रघुनाथदास, पुरुषोत्तमदास अग्रवाल

बुकसेलर्स एण्ड पब्लिशर्स, छत्ता बाजार मथुरा।

प्रथमबार	संवत्	मूल्य
२०००	२००७	।।।)

मिलने का पता—
रघुनाथदास, पुरुषोत्तमदास
ग्रन्थ प्रकाशक छत्ता बाजार मथुरा ।



मुद्रक—
सत्सङ्ग प्रिंटिंग प्रे
चाह बुर्ज हाथरस

* श्रीगणेशाय नमः *

लघुपाराशरी

भाषाटीकासहिता ।



सिद्धान्तमौपनिषदं शुद्धान्तं परमेष्ठिनः ।
शोणाधरं महः किञ्चिद्वीणाधरमुपास्महे ।१।

अर्थः—ग्रन्थकार सरस्वती देवी की उपासना करते हुये कहते हैं कि—वह वेदान्तों की सिद्धान्त स्वरूप है, ब्रह्मा की हृदय वासिनी गृहिणी है, उसके अधर बिम्बाफल सदृश अत्यन्त लाल वर्ण के हैं और कच्छपी नामक वीणा को धारण किये हुये है इससे उनकी आराधना मङ्गल कारिणी है ॥ १ ॥

वयं पाराशरीं होरामनुसृत्य यथाविधि ।
उडुदायप्रदीपाख्यं कुर्मो दैवविदां मुदे ।२।

अर्थः—महर्षि पाराशर रचित होरा-शास्त्र को मैं अपनी बुद्धि के अनुसार विचार कर ज्यौतिषियों के आनन्द के निमित्त अश्विनी आदि नक्षत्रों के फलों की सूचना देने वाला 'उडुदाय-प्रदीप' ग्रन्थ सम्पादन करता हूँ ॥ २ ॥

फलानि नक्षत्रदशाप्रकारेण विवृणमहे ।
दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या काष्टोत्तरी मता ।३।

अर्थः—मैं इस ग्रन्थ में नक्षत्र दशा के भेद द्वारा प्राणियों के सुख और दुःखों की व्याख्या करूँगा । परन्तु इस में केवल विंशोत्तरी दशा ही ली जायगी, अष्टोत्तरी (योगिनी) दशा ग्राह्य नहीं है ।

जन्मनक्षत्रत- दशाबोधकचक्र—

विंशोत्तरी दशा का क्रम

सूर्य आदि ग्रहों का क्रम यह है-सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, राहु, बृहस्पति, शनि बुधि, केतु और शुक्र, ये ग्रह दशा के स्वामी हैं । दशा लगाने का क्रम इस प्रकार है कि अश्विनी आदि नक्षत्रों में से अश्विनी और भरणी को छोड़कर कृत्तिका से प्रारम्भ कर जन्म नक्षत्र तक की संख्या गिन ले फिर उस गिनी संख्या में ६ से भाग दे । जो शेष बचे वही ग्रह की दशा होगी, अर्थात् कृत्तिका से प्रारम्भ करने पर जो ग्रह जन्म नक्षत्र में होगा प्रथम उसकी दशा होगी । इस प्रकार कृत्तिका उत्तराफल्गुनी और उत्तराषाढ़ में जन्म होने से सूर्य की दशा छः वर्ष की होती है । रोहिणी, हस्त और श्रवण नक्षत्र में जन्म होने से दश वर्ष की चन्द्रमा की दशा होती है । इसी प्रकार मंगल की सात वर्ष की, राहु की अठारह वर्ष, बृहस्पति की सोलह वर्ष, शनि की उन्नीस वर्ष, बुध की सत्रह वर्ष, केतु की सात वर्ष और शुक्र की बीस वर्ष की महा दशा होती है । जैसा उपरोक्त चक्र में स्पष्ट किया है । इनमें भुक्त दशा से कुछ फल नहीं है इससे भोग्य दशा का फल कहना उचित है । उसका प्रकार यह है कि अपने जन्म की दशा को जन्म नक्षत्र की

घड़ियों से गुनाकर देना, फिर जन्मनक्षत्र की घड़ियों से भाग देने पर जो बचे वह भुक्त दशा होती है, और जो बचे वह भोग्य दशा होती है। भुक्त वर्षों में भाग देने से जो शेष रहे उसका फल कहना। इससे अन्तर्दशा का ज्ञान होता है। अन्तर्दशा के जानने का उपाय यह है कि जिस दशा की अन्तर्दशा बनाना हो उस दशा को तीन से गुणाकर जो लब्ध हो उसे फिर तीन से गुणन करें, फिर तीन का भाग देने से जो शेष रहे वही अन्तर्दशा के मास आदि होते हैं। जैसे सूर्य की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा लाना होवे तो उसकी दशा क छः वर्ष को तीन से गुना करने पर अठारह होंगे, फिर इनको छः से गुना करने पर एक सौ आठ होता है,- यहाँ तीस से भाग देने पर तीन मास और अठारह दिन की सूर्यदशा में सूर्य की अन्तर्दशा होती है। छः महीना चन्द्रमा की चार महीना छः दिन मंगल को, दश महीना चौबीस दिन राहु की, नौ महीना अठारह दिन बृहस्पति की, ग्यारह महीना और बारह दिन शनि की, दश महीना छः दिन बुध की और चार महीना छः दिन केतु की अन्तर्दशा होती है। यह सूर्य की दशा जानने की रीति है। इसी प्रकार अन्यान्य ग्रहों की महादशा में अन्तर्दशा होती है।

अन्तर, प्रत्यन्तर, सूक्ष्म और प्राणदशा बनाने का क्रम महादशेश के वर्ष में या अन्तर्दशादिकों के मान में १२० से भाग देने से ध्रुव (१ वर्ष का) प्रमाण होता है। दशेश के वर्ष का तिगुना दिन अन्तर्दशा के लिये ध्रुवा होती है। दशा और अन्तर्दशा के स्वामियों के वर्षों को गुणा करके गुणन फल में ४० का भाग देने से प्रत्यन्तर्दशा के लिये दिनादि ध्रुवा होती है। दशेश अन्तर्दशेश और प्रत्यन्तर्दशेश के वर्षों के घात में ८० का भाग लगाने से सूक्ष्मदशा के लिये घट्यादि ध्रुवा प्राप्त होती है। इसी तरह दशा अन्तर प्रत्यन्तर और

सर्वे त्रिकोणनेतारो ग्रहाः शुभफलप्रदाः ।
पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः ।६।

अर्थः—पापग्रह भी यदि लग्न पञ्चम और नवम स्थान में रहें तो शुभफल देते हैं और यदि शुभग्रह भी तृतीय षष्ठ और एकादश स्थान में हो तो अशुभ फल देते हैं। तात्पर्य यह है कि सब ग्रह स्वभाव से ही शुभफल देते हैं। परन्तु यदि पापग्रह भी लग्न पचम और नवम स्थान में रहें तो वे भी शुभफल देते हैं, शुभ तो शुभ हैं ही। शुभग्रह भी यदि तृतीय षष्ठ एकादश स्थान में हो तो वे भी अशुभ फल देते हैं, तात्कालिक और स्वाभाविक भेद से ग्रहों के शुभाशुभत्व दो प्रकार से माने जाते हैं।

न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्याः केन्द्राधिपा यदि ।
क्रूराश्चेदशुभं ह्येते प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम् ।७।

अर्थः—सौम्यग्रह पूर्णचन्द्रमा, बुध, बृहस्पति और शुक्र यदि प्रथम चतुर्थ सप्तम और दशम स्थान के स्वामी हो तो वे शुभफल नहीं देते। परन्तु यदि क्रूर (सूर्य, मंगल और शनि) केन्द्र के स्वामी हों तो वे अशुभ फल नहीं देते। इन लग्नों पंचम और नवम स्थान के, तृतीय षष्ठ और एकादश स्थान के, और प्रथम चतुर्थ सप्तम और दशम स्थान के स्वामियों में पहिले स्थान के स्वामियों से पीछे के स्वामी ग्रह बली होते हैं। लग्न के स्वामी से पंचम का स्वामी प्रबल है। पंचम के स्वामी से नवम का स्वामी प्रबल है। तृतीय के स्वामी से षष्ठ का स्वामी प्रबल है। षष्ठ के स्वामी से एकादश का स्वामी प्रबल है। केन्द्र के स्वामियों में भी इसी प्रकार—प्रथम के स्वामी से चतुर्थ का, चतुर्थ के स्वामी से सप्तम का और सप्तम के स्वामी से दशम का प्रबल

होता है। इस प्रकार जो ग्रह प्रबल होता है उसी के अनुसार शुभ और अशुभ फल भी होता है ॥७॥

मेष और वृश्चिक राशि का स्वामी मङ्गल है। वृष और तुला राशि का स्वामी शुक्र है। कन्या और मिथुन का स्वामी बुध है। कर्क राशि का स्वामी चन्द्रमा है। धन और मीन राशि का स्वामी वृहस्पति है। मकर और कुम्भ राशि का स्वामी शनि है। सिंह राशि का स्वामी सूर्य है।

लग्नाद्व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः।
स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः फलदायकौ ॥८॥

अर्थ.--जन्म लग्न से दूसरे और बारहवें स्थान के स्वामी अन्य ग्रहों के सम्बन्ध में उनके स्थान के अनुसार शुभाशुभ फल देते हैं। द्वितीयेश और द्वादशेश शुभ और अशुभ ग्रह के सम्बन्ध होने से और मित्र स्थान के होने से मित्रद्वारा, तथा शत्रुस्थान के होने से शत्रुद्वारा शुभ और अशुभ फल देते हैं। इसी प्रकार दीप्त आदि पूर्वोक्त ग्रहों का शुभाशुभ फल होता है। दीप्त आदि ग्रहों का फल इस प्रकार है:--प्रदीप्तगृह की दशा में राज्यलाभ है, उत्साह वृद्धि शौर्य बढ़ती है, धन मिलता है, वाहन प्राप्ति होती है, स्त्री और पुत्र लाभ होता है, शुभ होता है, भाई बन्धुओं में सत्कार होता है, का और विद्या प्राप्त होती है। स्वस्थगृह की दशा में शरीर स्वस्थ राजा से मिले हुए धन आदि का सुख होता है, विद्या यश प्रीति और दूसरे देश से महिमा प्राप्त होती है, स्त्री धन पृथिवी और पुत्र का सुख होता है। प्रमुदित गृह की दशा में वस्त्र, पृथिवी, सुगन्ध, पुत्र, धन, धीरता, पुराण और धर्मशास्त्र का श्रवण, घोड़ा, रथ, हाथी, रंग बिरंगे वस्त्र और आभूषणों का सुख होता है। शान्त ग्रह की दशा में सुख और धैर्य मिलता है, भूमि, पुत्र, वाहन, विद्या, विनोद,

धर्मशास्त्र, धन, और राजा की ओर से सत्कार आदि सुख मिलता है। दीप्त ग्रह की दशा में अपना स्थान छूटता है, बन्धुओं से विरोध होकर नीच जीवन काटता है, कुटुम्ब से अलग और रोगों से दुःख पाता है। अतिदुःखित ग्रह की दशा में सदा नाना प्रकार के दुःख पाता है, बन्धु वियोग होता है, और चौर आग तथा राजा से भयभीत रहता है। विकलग्रह की दशा में विकल रहता है, मन में पीड़ा मित्र आदि की मृत्यु होती है, विशेष करके स्त्री, पुत्र और वाहनों का नाश हो और चोर की पीड़ा हो। खलग्रह की दशा में लोगों से वैर अपने कुटुम्ब और पिता से वियोग होता है, शत्रुओं से धन और भूमि नाश होता है, अपने कुटुम्ब के लोग निन्दा करते हैं। कोपीग्रह की दशा में नाना प्रकार के पापकर्म करता है, विद्या, धन, स्त्री और पुत्रों का नाश होता है, पुत्र आदि कष्ट पाते हैं और नेत्र रोग हो ॥८॥

भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः ।
स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत्स्वयम् ॥९॥

अर्थः—अष्टम-स्थान का स्वामी यदि नवम-स्थान, या व्यय-स्थान का स्वामी हो तो शुभफल नहीं देता, परन्तु यदि अष्टम का स्वामी लग्नेश हो तो अशुभ फल देता है।

केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान् गुरुशुक्रयोः ।
मारकत्वेऽपि च तयोर्मारकस्थानसंस्थितिः ॥१०॥

अर्थः—केन्द्राधिपति दोष, अर्थात् प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान के स्वामित्व का दोष, गुरु और शुक्र के ही विषय में प्रबल होता है। और मारक-स्थान में द्वितीय और सप्तम-

स्थान में उन दोनों का रहना भी और मारकों से इन दोनों में बली मारक है ॥१०॥

चन्द्रपि भवेत्तदनु तद्विधः ।
न रन्ध्रेशत्वदोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत् ।११।

अर्थः—केन्द्र का स्वामी बुध बृहस्पति और शुक्र से कम दोषी होता है। केन्द्र का स्वामी चन्द्रमा बुध से कम दुष्ट है, अर्थात् बुध में मारक शक्ति बृहस्पति और शुक्र से कम है, और चन्द्रमा में बुध से भी कम है। परन्तु सूर्य और चन्द्रमा को अष्टम-स्थान के स्वामित्व का दोष नहीं लगता। (ये दोनों मारक नहीं होते) ॥११॥

कुजस्य कर्मनेतृत्वप्रयुक्ता शुभकारिता ।
त्रिकोणस्यापि नेतृत्वे न कर्मेशत्वमात्रतः ।१२।

(अन्वयः) कुजस्य कर्मनेतृत्वप्रयुक्ता शुभकारिता त्रिकोणस्य अपि नेतृत्वे (सति) भवति न कर्मनेतृत्वमात्रतः ॥१२॥

अर्थः—मङ्गल तब शुभ देने वाला होता है, जब वह पञ्चम और नवम स्थान का स्वामी होकर दशम स्थान का स्वामी हो। केवल दशम स्थान का स्वामी होने पर ही मङ्गल शुभफल दाता नहीं होता। यह योग उसी ग्रहकुण्डली में पड़ता है जिसका जन्म कर्कलग्न में हो। कारण कि कर्कलग्न से वृश्चिक पञ्चम और मेष दशम पड़ता है, और मङ्गल उनका स्वामी है। पाराशरी में इसी प्रसङ्ग से ग्रहों का शुभ अशुभ और योगकारक होना स्पष्ट लिखा गया है।

यद्यद्भावगतौ वापि यद्यद्भावेशसंयुतौ ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहौ ।१३।

अर्थः—राहु और केतु जिस २ स्थान में रहैं, या जिस २ स्थान के स्वामी के साथ रहें तो प्रबल होकर भी उन २ स्थानों के स्वामी ग्रहों का ही फल देते हैं। वे दोनों स्वतन्त्र शुभ अशुभ नहीं करते, किन्तु शुभ और अशुभग्रहों के फल में सहायता करते हैं ॥१३॥

इति संस्कृतान्वय-भाषानुवादसहिते उडुदायप्रदीपे संज्ञाऽध्यायः प्रथमः ॥

अथ राजयोगाध्यायः ॥२॥

केन्द्रत्रिकोणपतयः सम्बन्धेन परस्परम् ।
इतरैरप्रसक्ताश्चेद्विशेषफलदायकाः ।१।

अर्थः--यदि तृतीय, षष्ठ, एकादश और अष्टम स्थान के स्वामियों से सम्बन्ध न रखते हुए प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम भाव के स्वामी, पंचम और नवम भाव के स्वामियों के साथ सम्बन्ध रखते हों तो विशेष फल देते हैं। केन्द्र और त्रिकोण के स्वामियों का सम्बन्ध चार प्रकार से होता है (१) एक का दूसरे के स्थान में रहना, (२) एक की पूर्णदृष्टि दूसरे पर होना, (३) दोनों मे एक की पूर्णदृष्टि का होना परन्तु दूसरे की दृष्टि का न होना और (४) एक ही स्थान में दोनों का रहना जैसे १ मेष या वृश्चिक राशि में सूर्य हो, और सिंह में मङ्गल हो तो दोनों का सम्बन्ध होता है। २ मेष में मङ्गल रहे और तुला में सूर्य हो तो दोनों की एक दूसरे पर पूर्णदृष्टि होती है।

सिंह राशि का मङ्गल मीन राशि वाले सूर्य को देखता है, परन्तु सूर्य मङ्गल को नहीं देखता। ४ सूर्य और मङ्गल दोनों का वृष राशि में होना। चारों सम्बन्धों में पहिले दो सम्बन्ध अगले २ सम्बन्धों से बलवान् हैं। इसी भाँति और २ राशिस्वामियों का सम्बन्ध जानना चाहिये ।॥१॥

केन्द्रत्रिकोणनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम् ।
सम्बन्धमात्राद्बलिनौ भवेतां योगकारकौ ।१।

अर्थः—चतुर्थ, सप्तम, दशम, पञ्चम और नवम स्थानों के अधिपति यदि स्वयं दोष वाले हों, तो पहले श्लोक वर्णित चारों सम्बन्धों से ही प्रबल होकर शुभफलदायक योग करने वाले होते है। पाराशरी में इसका वर्णन इस भाँति है कि पञ्चम और नवम स्थान विशेष धनस्थान कहा है और चतुर्थ तथा दशम स्थान विशेष सुखस्थान कहा है। चन्द्रमा और सूर्य के अतिरिक्त जितने मारकेश हैं सभी मारक हैं। षष्ठ अष्टम और द्वादशेश राहु, केतु, द्वितीय के स्वामी, द्रेष्काण के स्वामी, विनाशक स्थान के स्वामी, विपत् तारा, प्रत्यरि के स्वामी और चन्द्रमा के गुरु का स्वामी सब मारक हैं। मारक अपनी दशा में मृत्यु करता है, और अन्य की दशा में मृत्यु योग उपस्थित करता है ॥२॥

निवसेतां व्यत्ययेन तावुभौ धर्मकर्मणोः ।
एकत्रान्यतरो वापि वसेच्चेद्योगकारकौ ।३।

अर्थः—यदि केन्द्र और त्रिकोण के अधिपति अपने २ स्थान बदल कर रहें, या दोनों में से कोई एक किसी स्थान पर

हों तो भी राजयोग उत्पन्न करते हैं। यह योग चार प्रकार का होता है। (१) कर्मस्थान में धर्मेश रहे और धर्मस्थान में कर्मेश रहें। (२) धर्मस्थान में धर्मेश और कर्मेश दोनों रहें। (३) कर्मभाव में कर्मेश और धर्मेश रहे। (४) दोनों में से एक ही एक भाव में रहे जहां इनमें से कोई योग होगा, वहाँ राजयोग होता है ॥३॥

त्रिकोणाधिपयोर्मध्ये सम्बन्धो येन केनचित् ।
केन्द्रनाथस्य बलिनो भवेद्यदि सुयोगकृत् ।४।

अर्थः—यदि पञ्चम या नवम स्थान के स्वामियों में से जिस के साथ दशम स्थान के स्वामी का सम्बन्ध हो तो वह सुन्दर राजयोग करता है ॥४॥

दशास्वपि भवेद्योगः प्रायशो योगकारिणोः ।
दशाद्वयीमध्यगतस्तृदयुक्शुभकारिणाम् ।५।

अर्थः—राजयोग कारक केन्द्र और त्रिकोणेश की दशा से सम्बन्ध न करने वाले शुभग्रहों की दशा में भी प्रायः राजयोग होता है। अर्थात् नवमेश दशमेश की दशा के मध्य यदि किसी शुभग्रह की दशा आवे तो वह अवस्था अवश्य राजयोग कारक होती है। इस योग के लिये यह आवश्यक नहीं है कि नवमेश और दशमेश के साथ अन्तरदशा वाले शुभग्रहों का सम्बन्ध हो। यदि सम्बन्ध हो तो पूर्ण योग होता है ॥५॥

योगकारकसम्बन्धात् पापिनोऽपि ग्रहाः स्वतः ।
तत्तद्भुक्त्यनुसारेण दिशेयुर्योगजं फलम् ।६।

अर्थः—स्वयं अशुभ फल देने वाले ग्रह भी राजयोग कारक ग्रह के सम्बन्ध से उक्त ग्रह की अन्तर्दशा में राजयोग का फल देते हैं। अर्थात् जब योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा आती है, तब उसके साथ पापग्रह भी शुभ फल देते हैं ॥६॥

केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्वे योगकारकौ ।
अन्यत्रिकोणपतिना सम्बन्धो यदि किं परम् ।७

अर्थः—एक केन्द्र-स्वामी का यदि एक त्रिकोण स्वामी से सम्बन्ध होजाय, तो वे (दोनों) राजयोग करने वाले होते हैं। परन्तु यदि अन्य त्रिकोण-स्वामियों के साथ सम्बन्ध हो तो फिर इससे उत्तम और क्या होगा ? यह सर्वोत्तम राजयोग का अवसर है ॥७॥

यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ ।
नाथेनान्यतरेणापि सम्बन्धाद्योगकारकौ ।८।

अर्थः—जब राहु और केतु केन्द्र में या त्रिकोण में हों तब केन्द्र वा त्रिकोण के स्वामी के साथ सम्बन्ध होने पर दोनों राजयोग कर्त्ता होते हैं। इन का सम्बन्ध इस प्रकार होता है — जब ये दोनों केन्द्र में रहते हैं, तब त्रिकोणेश के साथ इनका सम्बन्ध होता है। इन राजयोगों के विषय में पाराशर का मत है, कि— यदि नवमेश मन्त्रेश हो, या मन्त्रेश नवमेश हो, या दोनों स्थानों के स्वामियों की परस्पर पूर्णदृष्टि हो तो राजयोग होता है। जहां दोनों का संयोग हो या दोनों बराबर सप्तम भाव में हों, तो राजकुल में उत्पन्न बालक राजा होता है। वाहनेश मान स्थान में हो या मानेश वाहन स्थान में हो, और दोनों पर राज्येश और धर्मेश की सम्पूर्णदृष्टि हो तो राजयोग होता है।

पञ्चमेश दशमेश चतुर्थेश और लग्नेश यदि नवमेश के साथ हो, तो ऐसे योग वाला दिग्विजयी राजा होता है उसके यहाँ मतवाले हाथियों का झुण्ड रहता है। चतुर्थेश और कर्मेश यदि पञ्चमेश के, या धर्मेश के साथ हों तो इस योग में उत्पन्न हुआ बालक राजा होता है। पञ्चमेश नवमेश के साथ होवै या २, ४, ११, में लग्नेश के साथ हो तो राजयोग होता है। धर्मस्थान में गुरु का स्थान में गुरु का स्थान हो, अपने गृह में शुक्र हो, और पञ्चमेश का महयोग हो तो राजयोग होता है। धर्मस्थान में गुरु का स्थान हो, अपने गृह में शुक्र हो, साथ ही पञ्चमेश का साथ हो तो राजयोग होता है। शुक्र के पञ्चम क्षेत्र में यदि शुक्र हो, और शनि लाभस्थान हो हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य बड़ा धनी होता है। बुध के प्रथम स्थान में यदि बुध हो और लाभस्थान मे चन्द्रमा हो तो इस योग में उत्पन्न पुरुष महा धनी होता है। शनि के पञ्चम क्षेत्र में यदि सूर्य हो और लाभस्थान में बुध हो, तो इस योग में उत्पन्न पुरुष भी बड़ा धनी होता है। यदि शनि के पञ्चम क्षेत्र में शनि हो और लाभस्थान में मङ्गल हो तो इस योग में उत्पन्न पुरुष भी बड़ा धनी होता है। वृहस्पति के पञ्चम क्षेत्र में यदि वृहस्पति हो और लाभ स्थान में चन्द्रमा और मङ्गल हों, तो इस योग में उत्पन्न पुरुष भी महा धनी होता है। सूर्य के क्षेत्र में यदि लग्न में सूर्य हो, और मङ्गल तथा वृहस्पति की उस पर संपूर्णदृष्टि हो, या सूर्य, मङ्गल और वृहस्पति के साथ हो, तो इस योग में उत्पन्न पुरुष धनी होता है। चन्द्रमा के क्षेत्र में यदि लग्न में चन्द्रमा हो, तथा उसके साथ वृहस्पति और मङ्गल हो, या उनकी पूर्णदृष्टि हो तो ऐसे योग में उत्पन्न पुरुष धनी होता है। मंगल हो और उसके साथ बुध शुक्र और शनि हो, या उनकी पूर्णदृष्टि हो, तो ऐसे योग में उत्पन्न पुरुष धनवान् होता है। वृहस्पति के क्षेत्र में लग्न में वृहस्पति

हो, और उसके साथ बुध और मंगल हों या उनकी पूर्णदृष्टि हो तो ऐसे योग में उत्पन्न पुरुष धनी होता है। बुध के क्षेत्र में लग्न में बुध हो और उसके साथ शनि और शुक्र हों, या उनकी पूर्णदृष्टि हो तो वह पुरुष धनी होता है। शुक्र के क्षेत्र में लग्न में यदि शुक्र हो, और उसके साथ शनि और बुध हो या उनकी सम्पूर्णदृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न पुरुष धनी होता है।

लग्नेश यदि द्वादशस्थान में हों द्वादशेश लग्न में हो और उसके साथ ही अष्टमेश हो या उसकी पूर्णदृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न पुरुष दरिद्री होता है। लग्नेश पर अष्टमेश की पूर्णदृष्टि हो तो उत्पन्न पुरुष दरिद्री होता है। लग्न और चन्द्रमा केतु के साथ हों या लग्नेश अस्त हो गया हो तथा उस पर अष्टमेश की पूर्णदृष्टि हो तो उत्पन्न पुरुष दरिद्री होता है। और लग्नेश षष्ठ या अष्टम स्थान में हो और उसके साथ पापग्रह हों और उस पर अष्टमेश की पूर्णदृष्टि हो तो उत्पन्न पुरुष चाहे वह राजकुल का हो क्यों न हो दरिद्री होता है। लग्नेश यदि षष्ठेश अष्टमेश और द्वादशेश के साथ हो उस पर पापग्रहों की संपूर्णदृष्टि हो और शुभग्रहों की दृष्टि न हो, तो उत्पन्न पुरुष दरिद्री होता है। मन्त्रेश और धर्मेश यदि षष्ठ और दशम स्थान में होवें और उन (दोनों) पर मारकेश की पूर्णदृष्टि हो तो (इस योग में) उत्पन्न पुरुष दरिद्री होता है। लग्न में यदि पापग्रह हो और उसके साथ राज्येश या धर्मेश न हो और मारकेश का साथ हो, या उसकी पूर्णदृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न होने वाला पुरुष दरिद्री होता है। जिस भाव का स्वामी अष्टम, षष्ठ और द्वादश स्थान में हो तथा उस पर पापग्रहों या शनि की दृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न होने पर पुरुष दुखी और दरिद्री होता है। चन्द्रमा का सहयोगी नवांशेश यदि मारकेश का साथी होतो

इस योग में उत्पन्न पुरुष भी दरिद्री होता है। लग्नेश और नवांशेश यदि द्वादश षष्ठ और अष्टम स्थान में हो और उस पर मारकेश की दृष्टि पड़ती हो या मारकेश का साथ हो तो इस योग में उत्पन्न पुरुष दरिद्री होता है ।।८।।

धर्मकर्माधिनेतारौ रन्ध्रलाभाधिपौ यदि ।
तयोः सम्बन्धमात्रेण न योगं लभते नरः ।९।

अर्थः—यदि नवें-स्थान का स्वामी अष्टम-स्थान का स्वामी हो, और दशम-स्थान का स्वामी ग्यारहवें-स्थान का स्वामी हो, या नवम-स्थान का स्वामी अष्टम-स्थान का स्वामी हो और दशम स्थान स्वामी एकादश स्थान का स्वामी हो तो राजयोग नहीं होता है ।।९।।

इति भाषानुवादसहिते उडुदायप्रदीपे द्वितीयो राजयोगाध्यायः समाप्तः ।।



अथ आयुर्विचाराध्यायः ।

अष्टमं ह्यायुषः स्थानमष्टमादष्टमं च यत् ।
तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते ।१।

अर्थः—जन्मलग्न से आठवें-स्थान, या अष्टम-स्थान से अष्टम (लग्न से तृतीय) स्थान आयुष्य का स्थान कहलाता है। और इन दोनों का व्ययस्थान (लग्न से सप्तम) और द्वितीय स्थान मारक है ।।१।।

तत्राप्याद्यव्ययस्थानात् द्वितीयं बलवत्तरम् ।
तदीशितुस्तत्र गताः पापिनस्तेन संयुताः ।२।
तेषां दशाविपाकेषु सम्भवे निधनं नृणाम् ।
तेषामसम्भवे साक्षाद्व्ययाधीशदशास्वपि ।३।

अर्थ:--दोनों मारकों में अष्टम का मारक बली है, और तृतीय स्थान का उससे कुछ बलवान् है इसलिये द्वितीयेश की अन्तर्दशा में मनुष्य का मरण होता है, वा द्वितीय-स्थान में जो जो पापग्रह होते हैं (षष्ठेश, तृतीयेश और द्वादशेश) उनकी अन्तर्दशा में मृत्यु होती है। यदि इन मारकेशों की दशा या अन्तर्दशा में मृत्यु न हो तो व्ययेश के जन्मलग्न से द्वादश स्थान के स्वामी की, या उसके साथी पापग्रहों का दशा, या अन्तर्दशा में मृत्यु होती है। मनुष्य की आयु तीन श्रेणियोंमें बटी है। १स्वल्प, २ मध्यम, और ३ दीर्घ, बत्तीस वर्ष से पहिले जो आयु समाप्त होती है वह अल्पायु है। ३२ से ऊपर ७० तक मध्यम और सत्तर के ऊपर जो आयु समाप्त होती है, उसे दीर्घ कहते हैं। १०० सौ से अधिक आयु होने पर उत्तमायु कही गयी है। जिसका लग्नेश सूर्य है वह अल्पायु है। जिसके लग्नेश शुक्र शनि और चन्द्रमा हों वह मध्यायु है। जिसके लग्नेश बुध बृहस्पति और मङ्गल हों वह दीर्घायु है। जिस पुरुष की अल्पायु हो, वह विपत्तारा में मरता है। मध्यायु वाला प्रत्यरितारा में, और उत्तमायु वाला मारक नक्षत्र में मृत्यु पाता है। उपरोक्त तीनों प्रकार की आयु, अल्प मध्यम और उत्तम भेद से तीन प्रकार की है। अल्पायु, मध्यात्पायु, उत्तमाल्पायु, अल्पमध्यायु, मध्यमध्यायु, उत्तममध्यायु, अल्पउत्तमायु, मध्यउत्तमायु, उत्तमउत्तमायु। इस प्रकार प्रथम आयुष्य का निश्चय कर तब मृत्यु

का विचार करना। यदि पुरुष अल्पायु सिद्ध हो जाये, तो जब उसे मारकेश की दशा आवे, तो मारकेश के स्थान में रहने वाले पापग्रहों की दशा आवेगी, वा मारकेश के साथी ग्रह की दशा आवेगी, तब पुरुष की मृत्यु होवेगी। इसी भांति मध्यायु और उत्तमायु की भी मृत्यु होती है।

अलाभे पुनरेतेषां सम्बन्धे व्ययेशितुः।
क्वचिच्छुभानाँ च दशास्वष्टमेशदशासु च ।४।

अर्थः—द्वादशेश, द्वादशस्थान में रहने वाले पापग्रह और द्वादशेश के साथी अन्य कोई न हो, तो द्वादशेश के साथी शुभग्रहों की दशा में ही मृत्यु होती है या अष्टमेष ग्रह की दशा में भी मृत्यु होती है ।।४।।

केवलानां च पापानाँ दशासु निधनं क्वचित्।
कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने ।५।

अर्थः—पहिले सब प्रकार के मारकेशों में कोई भी न हो, तो केवल पापग्रहों की दशा में ही मृत्यु होती है। इस समय तृतीय षष्ठ और द्वादश स्थान के स्वामियों की दशा में मृत्यु होती है। चन्द्रमा और सूर्य को छोड़कर जो ग्रह मारक स्थान में होता है वह मारक होता है। षष्ठ, अष्टम और द्वादश स्थान के स्वामी, तथा राहु केतु में जो ग्रह एकादश स्थान के नवांश का स्वामी हो, वह मारकेश है। इन सबकी दशा में मृत्यु होती है। इनमें शुभग्रह की दशा में शरीरकष्ट और पापग्रह की दशा में मृत्यु होती है ।।५।।

मारकैः सह सम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः।

अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः।६।

अर्थः—तृतीय षष्ठ और द्वादश स्थान का पापग्रह शनि मारक स्थान के स्वामियों के सम्बन्ध से और सब मारकों को हटाकर स्वयं मारक होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं।

इति श्री भाषानुवादसहिते उडुदायप्रदीपे आयुर्दायाध्यायः ॥



अथ दशाफलाध्यायः।

न दिशेयुर्ग्रहाः सर्वे स्वदशासु स्वभुक्तिषु।
शुभाशुभफलं नृणामात्मभावानुरूपतः ।१।

अर्थः—मनुष्यों को सूर्य आदि समस्त ग्रह अपनी २ दशा और अन्तर्दशा में अपने २ स्वरूप के अनुसार शुभ और अशुभ फल नहीं देते। आगे यही बात सिद्ध की जावेगी ॥१॥

आत्मसम्बन्धिनो ये च ये वा निजसधर्मिणः।
तेषामन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम्।२।

अर्थः—जो ग्रह अपने सम्बन्धी हैं, या जो अपने समान है, उन्हीं की अन्दर्शा में शुभ अशुभ फल देते हैं। अर्थात् ग्रहों का सम्बन्ध परस्पर चार चार प्रकार से होता है, (यह बात पहले लिखी गई है।) इन चारों सम्बन्धों में जिनके साथ कोई सम्बन्ध होता है, या जो शुभ होने से शुभ दशेश के समान है, या अशुभ होने से अशुभ दशेश के समान हैं, उन्हीं की दशा में शुभ अशुभ फल देते हैं ॥२॥

इतरेषां दशानाथविरुद्धफलदायिनाम् ।
तत्तत्फलानुगुण्येन फलान्यूह्यानि सूरिभिः ।३।

अर्थः—जो ग्रह दशेश से सम्बन्ध नहीं रखते, या उसके समान नहीं है, किन्तु दशेश के विरुद्ध फल दाता है, उन (ग्रहों) की अन्तर्दशा में उनके फल अनुसार दशेश शुभ फल देनेवाला है। परन्तु और ग्रह अशुभ फल दे तो उन ग्रहों की अन्तर्दशा में, दशेश भी शुभ फल देता है। (वह स्वय शुभाशुभ फल नहा देता) ॥३॥

स्वदशायां त्रिकोणेशभुक्तौ केन्द्रपतिः शुभम् ।
दिशेत् सोऽपि तथा नो चेदसम्बन्धेन पापकृत्। ४।

अर्थः—केन्द्र का स्वामी अपनी दशा में सम्बन्ध होने पर त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में शुभ फल देता है, और त्रिकोणेश भी अपनी दशा में केन्द्र के साथ यदि उसका सम्बन्ध हो, तो अपनी अन्तर्दशा में शुभ फल देता है। यदि दोनों का परस्पर सम्बन्ध न हो तो दोनों ही अशुभ फल देते हैं।

आरम्भो राजयोगस्य भवेन्मारकभुक्तिषु ।
प्रथयन्ति तमारभ्य क्रमशः पापभुक्तयः ।५।

अर्थः—यदि द्वितीयेश और सप्तमेश की अन्तर्दशा में राजयोग का आरम्भ हो तो पापग्रह की दशायें नहीं होती, अर्थात् वह राजा तो अवश्य होता है, परन्तु उसका खजाना, हाथी घोड़ा, ग्राम भूमि आदि बढ़ते नहीं ॥५॥

तत्सम्बन्धिशुभानां च तथा पुनरसंयुजाम् ।

शुभानां तु समत्वेन संयोगो योगकारिणाम् । ६ ।

अर्थः—राजयोग करनेवाले ग्रहों की महादशा में उनके साथी शुभग्रहों की अन्तर्दशा हो, या राजयोग करनेवाले ग्रहों की अन्तर्दशा हो, दोनों में समान शुभफल होता है। इसी भाँति पापग्रह की महादशा में, उसके साथी पापग्रह की अन्तर्दशा हो या उसके साथ न रहने वाले पापग्रह की अन्तर्दशा हो, दोनों में अशुभ फल समान ही होता है ॥ ६ ॥

शुभस्यास्य प्रसक्तस्य दशायां योगकारकाः ।
स्वभुक्तिषु प्रयच्छन्ति कुत्रचिद्योगजं फलम् ।७।

अर्थः—राजयोग कर्त्ता शुभग्रह की महादशा में उसके साथी राजयोग करनेवाले अन्य शुभग्रह अपनी २ अन्तर्दशा में कभी राजयोग करने वाले ग्रह की महादशा में जब राजयोग कर्त्ता ग्रह की अन्तर्दशा आती है तब वह अपना पूरा फल देती है ॥ ७ ॥

तमोग्रहौ शुभारूढावसम्बन्धेन केनचित् ।
अन्तर्दशानुसारेण भवेतां योगकारकौ । ८ ।

अर्थः—किसी राजयोग कारक ग्रह के साथ सम्बन्ध न रहने से राजयोग भ्रष्ट करणेवाले राहु और केतु यदि प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, दशम, पञ्चम और नवम स्थान में से कहीं रहें तो राजयोग कारक ग्रह की अन्तर्दशा आने पर ही राजयोग का फल देते हैं। उसमें भी शुभग्रह की अन्तर्दशा में शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में अशुभ फल देते हैं ॥ ८ ॥

—

अथ मिश्रकाध्यायः ।

पापा यदि दशानाथाः शुभानां तदसंयुजाम् ।
भुक्तयः पापकृतदास्तत्संयुक्शुभभुक्तयः । १ ।
भवन्ति मिश्रफलदा भुक्तयो योगकारिणाम् ।
अत्यन्तपापफलदा भवन्ति तदसंयुजाम् । २ ।

अर्थः—यदि महादशा का स्वामी पापग्रह हो तो उससे सम्बन्ध न रखने वाले पापग्रहों की अन्तर्दशा अशुभ फल देती है; उसके (ददेश के) सम्बन्धी शुभग्रहों की अन्तर्दशा मिश्रित फल देती है, उसके साथ सम्बन्ध न रखने वाले और राजयोग कारक पापग्रहों की अन्तर्दशा महाकष्ट कारक है ॥१-२॥

सत्यपि स्वेन सम्बन्धे न हन्ति शुभभुक्तिषु ।
हन्ति सत्यप्यसम्बन्धे मारकः पापभुक्तिषु ।३।

अर्थः—मारक ग्रह के साथ यदि शुभग्रह का सम्बन्ध हो, तो भी (शुभग्रह की दशा में) मारक मनुष्य का प्राण नहीं लेपाता, और सम्बन्ध न रहने पर भी पापग्रह की दशा में मारक ग्रह मनुष्य का प्राण लेता ही है। इससे मारकेश की दशा में शुभ और पापग्रह की अन्तर्दशा ही मारक और रक्षक है उसके साथ सम्बन्ध कुछ नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

परस्परदशायाँ स्वभुक्तौ सूर्यजभार्गवौ ।
व्यत्ययेन विशेषेण प्रदिशेतां शुभाशुभम् ४।

अर्थ—शनि और शुक्र दोनों एक ही महादशा में दूसरे की अन्तर्दशा आने पर अवश्य ही परिवर्त्तित शुभ और अशुभ फल देते हैं। तात्पर्य यह है कि यदि शुक्र की महादशा में शनि की अन्तर्दशा आजाय तो शुक्र की दशा का फल नहीं। किन्तु बदले में शनि की दशा का फल अशुभ ही होता है। इसी प्रकार शनि की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा आवे तो शनि की दशा का अशुभ फल नहीं होता किन्तु शुभ होता है॥ ४॥

कर्मलग्नाधिनेतारावन्योऽन्याश्रयसांस्थितौ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत्।५।

अर्थः—यदि दशमेश और लग्नेश दोनों आपस में १ दूसरे के स्थान में हों तो दोनों राजयोग कारक होते हैं। इस योग में पैदा होने वाले पुरुष जगत् प्रसिद्ध और संग्राम विजयी होते हैं॥५॥

धर्मकर्माधिनेतारावन्योन्याश्रयसांस्थितौ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यतो विजयी भवेत्।६।

अर्थः—यदि नवमेश दशमेश के स्थान में हो या दशमेश नवमेश के स्थान में हो तो पूर्वोक्त की भाँति दोनों राजयोग कारक होते हैं। इस योग में पैदा होने वाला पुरुष भी जगत् प्रसिद्ध और संग्राम विजयी होता है।

ग्रहों के स्वाभाविकफल

सूर्य—राज्य, मूंगा, लाल वस्त्र, मानिक, राज्य, वन पर्वत कृषि और पितृ सुख कारक है।

चन्द्र—माता, मानसिक शाँति, सुगन्ध, रस, गेहूँ, क्षार, भूमि, दंत शक्ति, कार्य और धन धान्य कारक है।

मंगल—बल, पृथ्वी, घर, पुत्र, चरित्र, चोरी, रोग, ब्रह्मतेज, परिवार, शौर्य, साहस, अग्नि और राजद्रोह कारक है।

बुध—गणित, ज्योतिष, मामा का परिवार, हास्य, भय लक्ष्मी तथा कलाकौशल कारक है।

गुरु—स्वधर्म शीलता, सुकर्म, देवता, ब्राह्मण, धन, गृह परिवार, स्वर्ण, वस्त्र और पुत्र मित्र कारक है।

शुक्र—स्त्री सुख, काम वासना, रसिकता, काव्यादि गुण, पुष्प, कोमलता, यौवन, आभूषण वाहन रत्न, मद, धन और माधुर्य कारक है।

शनि—हाथी, घोड़ा, भैंसा भैंस, तेल, वस्त्र, शृंगार, विदेश गमन, नीलम, क्लेश, व्रण, शूल और दास दासी आयु आदि कारता है।

राहु—काल, विदेशयात्रा, सर्पभयादि, रात्रि और जुआ आदि कारता है।

केतु—दर्द, चर्म रोग, घाव, क्षुधा और पीड़ा कारक है।

ग्रह शान्ति निमित्त दान आदि

सूर्य—माणिक, गेहूं, लाल गाय, बछड़ा, लाल वस्त्र, घृत, स्वर्ण, और तांबा दान करने से सूर्य ग्रह की शाँति होती है।

चन्द्रमा—श्वेत वस्त्र, कपूर, शंख, श्वेत चंवर, मोती, जनेऊ, श्वेत बछड़ा या बैल, घृत घट और चांदी के दान से चंद्र ग्रह शांत होता है।

मंगल—लाल वस्त्र, स्वर्ण, तांबा, लाल बैल, गेहूं, मिश्री, मूंगा और लाल फूल का दान मंगल को संतुष्ट करता है।

बुध—नीले वस्त्र, कांसा, फल, मूंगा, घृत, चाँदी और हाथी दांत के दान से बुध संतुष्ट होतें हैं।

गुरु—पीले वस्त्र, फूल, हल्दी, चावल, चीनी, पुखराज रत्न और स्वर्ण दान से गुरु प्रसन्न होते हैं।

शुक्र—श्वेत अश्व, यागौ हीरा, चांदी, सोना, श्वेत चन्दन घृत और रंग विरंगे वस्त्र दान से शुक्र संतुष्ट होते हैं।

शनि—काले वस्त्र, गाय, लोहा, तेल, छाता, उड़द, तिल नीलम और भैंसा के दान से शनि प्रसन्न होते हैं।

राहु—नीले वस्त्र, काला ऊनी वस्त्र गोमेद, तिल, तेल और लोहे के दान से राहु प्रसन्न होता है।

केतु—तेल, तिल, वैडूर्य, कस्तूरी तथा नीले वस्त्र के दान से केतु प्रसन्न होते हैं।

उक्तदान आदि के अतिरिक्त जप, होम, स्तुति एवं देव ब्राह्मण पूजन से भी सर्व ग्रह शान्ति होते हैं।

जन्मनक्षत्रतः दशाबोधकचक्र—

सू. ६	चं. १०	मं. ७	रा. १८	बृ. १६	श. १९	बु. १७	के. ७	शु. २०	ग्रहाः वर्षा
कृ. उ.फ. उ.षा.	रो. ह. श्र.	मृ. चि. ध.	आ. स्वा. श.	पुन. वि. पू.भा.	पुष्य. अनु. उ.भा.	आ. ज्ये. रेव.	म. मू. अ.	पू.फ. पू.षा. भर.	नक्षत्राणि

सूर्य की दशा में अन्तर्दशा

सू.	चं	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	ध्रु	ग्रह
०	०	०	०	०	०	०	०	१	०	
३	६	४	१०	९	११	१०	४	०	०	वर्षादि
१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०	१८	

चन्द्रमा की दशा में अन्तर्दशा

चां.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	ध्र.	ग्रह
०	०	१	१	१	१	०	१	०	०	
१०	७	६	४	७	५	७	८	६	१	वर्षादि
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	

मंगल की दशा में अन्तर्दशा

मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चां.	ध्र.	ग्रह
०	१	०	१	०	०	१	०	०	०	
४	०	११	१	११	४	२	४	७	०	वर्षादि
२७	१८	६	९	२७	२७	०	६	०	२१	

राहु की दशा में अन्तर्दशा

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चां.	मं.	ध्र.	ग्रह
२	२	२	२	१	३	०	१	१	०	
८	४	१०	६	०	०	१०	०	०	१	वर्षादि
१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८	२४	

वृहस्पति की दशा में अन्तर्दशा

बृ.	श.	बु	के.	शु.	सू.	चां.	मं.	रा.	ध्र.	ग्रह
२	२	२	०	२	०	१	०	२	०	
१	६	३	११	८	९	४	११	४	१	वर्षादि
१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४	१८	

शनि की दशा में अन्तर्दशा

श.	बु.	कं.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	ध्रु	प्र.
३	२	१	३	०	१	१	२	२	०	वर्षादि
०	८	१	२	११	७	१	१०	६	१	
३	९	९	०	१२	०	९	६	१२	२७	

बुध की दशा अन्तर्दशा

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	म.	रा.	वृ.	श.	ध्रु.	प्र.
२	०	२	०	१	०	२	२	२	०	वर्षादि
४	११	१०	१०	५	११	६	३	८	१	
२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२१	

केतु की दशा में अन्तर्दशा

के.	शु.	सू.	चं.	म.	रा.	वृ.	श.	बु.	ध्रु	प्र.
०	१	०	०	०	१	०	१	०	०	वर्षादि
४	२	४	७	४	[illegible]	११	१	११	०	
२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२१	२१	

शुक्र की दशा में अन्तर्दशा

शु.	सू.	चां.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	ध्रु	प्र.
३	१	१	१	३	२	३	२	१	०	वर्षादि
४	०	८	२	०	८	२	१०	२	२	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	

सूर्य की दशा और सूर्य ही की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

सू.	चं.	म.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	ध्रु	प्र.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मासादि
५	९	६	१६	१४	१७	१५	६	१८	०	
२४	०	१८	१२	२४	६	१८	१८	०	५४	

सूर्य की दशा और चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

चां.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	ध्रु	ग्र.
०	०	०	०	०	०	०	१	०	०	मासादि
१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	६	१	
०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	३०	

सूर्य की दशा में मङ्गल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

म.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चां.	ध्रु.	ग्र.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मासादि
७	१८	१६	१६	१७	७	२१	६	१०	१	
२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	१८	३०	३	

सूर्य की दशा में राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चां.	मं.	ध्रु.	ग्र.
१	१	१	१	०	१	०	०	०	०	मासादि
१८	१३	२१	१५	१८	२४	१६	२७	१८	२	
३६	१२	१८	५४	५४	०	१२	०	५४	४२	

सूर्य की दशा में गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चां.	मं.	रा.	ध्रु.	ग्र.
१	१	१	०	१	०	०	०	१	०	मासादि
८	१५	१०	१६	१८	१४	२४	१६	१३	२	
२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२	२४	

सूर्य की दशा में शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चां.	मं.	रा.	बृ.	ध्रु.	ग्र.
१	१	०	१	०	०	०	१	१	०	मासादि
२४	१८	१६	२७	१७	२८	१६	२१	१५	२	
६	२७	५७	०	६	३०	५७	१८	३६	५१	

सूर्य की दशा में बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बु.	के.	शु.	सू.	चां.	म.	रा.	बृ.	श.	ध्रु	ग्र.
१	०	१	०	०	०	१	१	१	०	मा
१३	१७	२१	१५	२५	१७	१५	१०	१८	२	सा
२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८	२७	३३	दि

सूर्य की दशा में केतु के अन्तर मे प्रत्यन्तर्दशा

के.	शु.	सू.	चां.	म.	रा.	बृ.	श.	बु.	ध्रु	ग्र.
०	०	०	०	०	१	०	०	०	०	मा
७	२१	६	१०	७	१८	१६	१६	१७	१	सा
११	०	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	३	दि

सूर्य की दशा में शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर्दशा

शु.	सू.	चां.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	ध्रु	ग्र.
२	०	१	०	१	१	१	१	०	०	मा
०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	३	सा
०	०	०	००	०	०	०	०	०	०	दि

चन्द्रमा की दशा और चन्द्रमा ही की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	शू.	ध्रु	ग्र.
०	०	१	१	१	१	०	१	०	०	मा
२५	१७	१५	१०	१७	१२	१७	२०	१५	२	सा
०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	३०	दि

चन्द्रमा की दशा, मंगल की अन्तर्दशा में प्रयन्तर्दशा

म.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	शू.	चां.	ध्रु.	ग्र.
०	१	०	१	०	०	१	०	०	०	मा
१२	१	२८	३	२६	१२	५	१०	१७	१	सा
१५	३०	०	१५	४५	३५	०	३०	३०	४५	दि

चन्द्रमा की दशा, राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	ध्रु.	प्र.
२	२	२	२	१	२	०	१	१	०	मासादि
२१	१२	२५	१६	१	०	२७	१५	१	४	
०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	३०	

चन्द्रमा की दशा, बृहस्पति की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	ध्रु.	प्र.
२	२	२	०	२	०	१	०	२	०	मासादि
४	१६	८	२८	२०	२४	१०	२८	१२	४	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	

चन्द्रमा की दशा शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	ध्रु.	प्र.
३	२	१	३	०	१	१	२	२	०	मासादि
०	२०	३	५	२८	१७	३	२५	१६	४	
१५	४५	१५	०	३०	३०	१५	३०	०	४५	

चन्द्रमा की दशा बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	ध्रु.	प्र.
२	०	२	०	१	०	२	२	२	०	मासादि
१२	२६	२५	२५	१२	२६	१६	८	२०	४	
१५	४५	०	३०	३०	४५	३०	०	४५	१५	

चन्द्रमा की दशा केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	ध्रु.	प्र.
०	१	०	०	०	१	०	१	०	०	मासादि
१२	५	१०	१७	१२	१	२८	३	२६	१	
१५	०	३०	३०	१५	३०	०	१५	४५	४५	

चंद्रमा की दशा शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा।

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	ध्रु	ग्र.
३	१	१	१	३	२	३	२	१	०	मासादि
१०	०	२०	५	०	२०	५	२५	५	५	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	

चंद्रमा की दशा और सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	ध्रु	ग्र.
०	०	०	०	०	०	०	०	१	०	मासादि
६	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	१	
०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	३०	

अथ मंगल की दशा और मंगल ही की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	ध्रु.	ग्र.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मासादि
८	२२	१६	२३	२०	८	२४	७	१२	१	
३४	३	३६	१६	४६	३४	३०	२१	१५	१३	
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	

मंगल की दशा राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	ध्रु	ग्र.
१	१	१	१	०	२	०	१	०	०	मासादि
२६	२०	२६	२३	२२	३	१८	१	२२	३	
४२	२४	५१	३३	३		५४	३०	३	६	

मंगल की दशा बृहस्पति की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	ध्रु	ग्र.
१	१	१	०	१	०	०	०	१	०	मासादि
१४	२३	१७	१६	२६	१६	२८	१६	२०	२	
४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	

मंगल की दशा शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	ध्रु.	ग्र.
२	१	०	२	०	१	०	१	१	०	मासादि
३	२६	२३	६	१६	३	२३	२६	२३	३	
१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	१६	
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	

मंगल की दशा बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	ध्रु.	ग्र.
१	०	१	०	०	०	१	१	१	०	मासादि
२०	२०	२६	१७	२६	२०	२३	१७	२६	२	
३४	४६	३०	५१	४५	४६	३३	३६	३१	५८	
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	

मंगल की दशा केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	ध्रु.	ग्र.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मासादि
८	२४	७	१२	८	२२	१६	२३	२०	१	
३४	३०	२१	१५	३४	३	२६	१६	४६	१३	
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	

मंगल की दशा शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	ध्रु.	ग्र.
२	०	१	०	२	१	२	१	०	०	मासादि
१०	२१	५	२४	३	२६	६	२६	२४	३	
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	३०	

मंगल की दशा और सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	ध्रु.	ग्र.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मासादि
६	१०	७	१८	१६	१६	१७	७	२१	१	
१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	००	३	

मंगल की दशा चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	ध्रु	प्र.
०	०	१	०	१	०	०	१	०	०	मासादि
१७	१२	१	२८	३	२६	१२	५	१०	१	
३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	४५	

राहु की दशा में राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	ध्रु.	प्र.
४	४	५	४	१	५	१	२	१	०	मासादि
२५	६	३	१७	२६	१२	१८	२१	२६	८	
४८	३६	५४	४२	४२	०	३६	०	४२	६	

राहु की दशा बृहस्पति की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	म.	रा.	ध्रु	प्र.
३	४	४	१	४	१	२	१	४	०	मासादि
२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	६	७	
१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	३६	१२	

राहु की दशा शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	ध्रु	प्र.
५	४	१	५	१	२	१	५	४	०	मासादि
१२	२५	२६	२१	२१	२५	२६	३	१६	८	
२७	२१	५१	०	१८	३४	५१	५४	४८	३३	

राहु की दशा बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	ध्रु	प्र.
४	१	५	१	२	१	४	४	३	०	मासादि
०	२३	३	१५	१६	२३	१७	२	२५	७	
३	३३	०	५४	३०	३३	४२	२४	२१	३६	

राहु की दशा केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

के.	शु.	सू.	चं.	म.	रा.	बृ.	श.	बु.	घ्र.	ग्र.
०	२	०	१	०	१	१	१	१	०	मासादि
२२	२	१८	१	२२	२६	२०	२९	२३	३	
३	०	५४	३०	३	४२	२४	५१	३३	६	

राहु की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	घ्र.	ग्र.
६	१	३	२	५	४	५	५	२	४	मासादि
०	२४	०	२	१२	२४	२१	३	३	६	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	

राहु की दशा सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

सू.	चं	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के	शु.	घ्र.	ग्रह
०	०	०	१	१	१	१	०	१	०	मासादि
१६	२७	१८	१८	१३	२१	१५	१८	२४	२	
१२	०	५४	३६	१२	१८	५४	५४	०	४२	

राहु की दशा चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	घ्र.	ग्रह
१	१	२	२	२	२	१	३	०	०	मासादि
१५	१	२१	१२	२५	१६	१	०	२७	४	
०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	३०	

राहु की दशा मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

म.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	घ्र.	ग्रह
०	१	१	१	१	०	२	०	१	०	मासादि
२२	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	३	
३	४२	२४	५१	३३	३	३०	५४	३०	६	

अथ बृहस्पति की दशा और बृहस्पति की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	ध्रु	प्र.
३	४	३	१	४	१	२	१	३	०	मासादि
१२	१	१८	१४	८	८	४	१४	२५	६	
२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२	२४	

बृहस्पति की दशा शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	ध्रु	प्र.
४	४	१	५	१	२	१	४	४	०	मासादि
२४	६	२३	२	१५	१६	२३	१६	१	७	
२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८	१६	३६	

बृहस्पति की दशा बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बु.	के.	शु.	सू.	च.	मं.	रा.	बृ.	श	ध्रु	प्र.
३	१	४	१	२	१	४	३	४	०	मासादि
२५	१७	१६	१०	८	१७	२	१८	६	६	
३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	४८	

बृहस्पति की दशा में केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	ध्रु	ग्रह
०	१	०	०	०	१	१	१	१	०	मासादि
१६	२६	१६	२८	१६	२०	१४	२३	१७	२	
३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	३६	४८	

बृहस्पति की दशा शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	ध्रु	प्र.
५	१	२	१	४	४	५	४	१	०	मासादि
१०	१८	२०	२६	२४	८	२	१६	२६	८	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	

बृहस्पति की दशा सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

सू.	चं	मं.	रा.	वृ	श.	बु.	के.	शु.	ध्रु	ग्रह
०	०	०	१	१	१	१	०	१	०	मासादि
१४	२४	१६	१३	८	१५	१०	१६	१८	२	
२८	०	४८	१२	२४	३६	४८	४८	०	२४	

बृहस्पति की दशा चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	ध्रु	ग्रह
१	०	२	२	२	२	०	२	०	०	मासादि
१०	२८	१२	४	१६	८	२८	२०	२४	४	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	

बृहस्पति की दशा मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	ध्रु.	ग्रह
०	१	१	१	१	१	१	०	०	०	मासादि
१९	२०	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	२	
३६	२४	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	४८	

बृहस्पति की दशा राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	ध्रु.	ग्रह
४	३	४	४	१	४	१	२	१	०	मासादि
९	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	७	
३६	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	१२	

अथ शनि की दशा और शनि की ही अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

श.	बु	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	ध्रु.	ग्रह
५	५	२	६	१	३	२	५	४	०	मासादि
२१	३	३	०	२४	०	३	१२	२४	९	
२८	२५	१०	३०	९	१५	१०	२७	२४	१	
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	

शनि की दशा बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	ध्रु.	ग्र.
४	१	५	१	२	१	४	४	५	०	मासादि
१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	६	३	८	
१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२	२५	४	
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	

शनि की दशा केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	ध्रु.	ग्र.
०	०	०	१	०	१	१	२	१	०	मासादि
२३	६	१६	३	२३	२६	२३	३	२६	३	
१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	१०	२१	१६	
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	

शनि की दशा, शुक्र का अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	ध्रु.	ग्र.
६	१	३	२	५	५	६	५	२	०	मासादि
१०	२७	५	६	२१	२	०	११	६	६	
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	३०	

शनिकी दशा सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	ध्र.	ग्र.
०	०	०	१	१	१	१	०	१	०	मासादि
१७	२८	१६	२१	१५	२४	१८	१६	२७	२	
६	३०	५७	१८	३६	६	२७	५७	०	५१	

शनि की दशा, चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	ध्रु.	ग्र.
१	१	२	२	३	२	१	३	०	०	मासादि
१७	३	२५	१६	०	२०	३	५	२८	४	
३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	४५	

शनि की दशा मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	च.	ध्रु.	ग्र.
०	१	१	२	१	०	२	०	१	०	मासादि
२३	२६	२३	३	२६	२३	६	१६	३	३	
१६	५१	१२	१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	

शनि की दशा राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	म.	ध्रु.	ग्र.
५	४	५	४	१	५	१	५	१	०	मासादि
३	१६	१२	२५	२६	२१	२१	२५	२६	८	
५४	४८	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१	३३	

शनि की दशा गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	ध्रु.	ग्र.
४	४	४	१	५	१	२	१	४	०	मासादि
१	२४	६	२३	२	१५	१६	२३	१६	७	
३६	२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८	३६	

अथ बुध की दशा बुध ही की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा	बृ.	श.	ध्रु	ग्र.
४	१	४	१	२	१	४	३	४	०	मासादि
२	२०	२४	१३	१२	२०	१०	२५	१७	७	
४६	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	१३	
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	

बुध की दशा केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	ध्रु	ग्र.
०	१	०	०	०	१	१	१	१	०	मासादि
२०	२६	१७	२६	२०	२३	१७	२६	२०	२	
४६	३०	५१	४५	४६	३३	३६	३१	३४	५८	
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	

बुध की दशा, शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	घ्रु.	प्र.
५	१	२	१	५	४	५	४	१	०	मासादि
२०	२१	२५	२९	३	१६	११	२४	२९	८	
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	३०	

बुध की दशा सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

सू.	चं.	म.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	घ्र.	प्र.
०	०	०	१	१	१	१	०	१	०	मासादि
१५	२५	१७	१५	१०	१८	१३	१७	२१	२	
१८	३०	५१	५४	४८	२७	२१	५१	०	३३	

बुध की दशा, चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	घ्रु.	प्र.
१	०	२	२	२	२	०	२	०	०	मासादि
१२	२९	१६	८	२०	१२	२९	५	२५	४	
३०	४५	३०	०	४५	१५	४५		३०	१५	

बुध की दशा मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	ध्र.	ग्रह
०	१	१	१	१	०	१	०	०	०	मासादि
२०	२२	१७	२६	२०	२०	२९	१७	२९	२	
४९	३३	३६	३१	३४	४९	३०	५१	४५	५८	
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	

बुध की दशा राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	ध्रु.	ग्रह
४	४	४	४	१	५	१	२	१	०	मासादि
१७	२	२५	१०	२३	३	१५	१६	२३	७	
४२	२४	२१	३	३३	०	५४	३०	३३	३९	

बुध की दशा गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	ध्रु	ग्र.
३	४	३	१	४	१	२	१	४	०	मासादि
१८	६	२५	१७	१६	१०	८	१७	२	६	
४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	

बुध की दशा शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं	मं.	रा.	बृ.	ध्रु.	ग्र.
०	४	१	५	१	२	१	४	४	०	मासादि
८	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	६	८	
३४	१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२	४	
३०		३०	०	०	०	३०	०	०	३०	

अथ केतु की दशा केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	ध्रु	ग्र.
१	१	१	०	०	०	१	०	०	०	मासादि
२६	२०	२६	१२	८	२२	१६	२३	२०	२	
४२	२४	५१	१५	३	३	३६	१६	४६	५८	
			०	३०	०	०	३०	३०	३०	

केतु की दशा शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	ध्र	ग्र.
२	०	१	०	२	१	२	१	०	०	मासादि
१०	२१	५	२४	३	२६	६	२६	२४	३	
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	३०	

केतु की दशा सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

शु.	के	सू.	चं.	मं.	रा.	मं	श.	बु.	ध्रु	ग्र.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मासादि
६	१०	७	१८	१६	१६	१७	७	२१	१	
१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	००	३	

केतु की दशा, चन्द्रमा को अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

चां.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	घ्रु.	प्र.
०	०	१	०	१	०	०	१	०	०	मासादि
१७	१२	१	२८	३	२६	१२	५	१०	१	
३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	४५	

केतु का दशा मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	घ्रु.	प्र.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मासादि
८	२२	१६	१३	२०	८	२४	७	१२	१	
३४	२	३६	१६	४६	३४	३०	२१	१५	१३	
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	३०	३०	

केतु की दशा राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चां.	म.	घ्रु.	प्र.
१	१	१	१	०	२	०	५	१	०	मासादि
२६	२०	२६	२३	२२	३	१८	२५	२६	८	
२४	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	५१	३३	

केतु की दशा गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बृ.	शा.	बु.	के.	शु.	सू.	चां.	म.	रा.	घ्रु.	प्र.
१	५	१	०	१	०	०	०	१	०	मासादि
१४	२३	१७	१६	२६	१६	२८	१६	२०	२	
४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	

केतु की दशा शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	घ्रु.	प्र.
२	१	०	२	०	१	०	१	१	०	मासादि
३	२६	२३	६	१६	३	२३	२६	२३	३	
१७	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	१६	
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	

केतु की दशा बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बु.	के.	शु.	सू.	चां.	मं.	रा.	बृ.	श.	घ्रु	ग्र.
१	०	१	०	०	०	१	१	१	०	मासादि
२०	२०	२६	१७	२६	२०	२३	१७	२६	२	
३४	४६	३०	५१	४५	४६	३३	३६	३१	५८	
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	

अथ शुक्र की दशा शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

शु.	सू.	चं०	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	घ्रु	प्र.
६	२	३	२	६	५	६	५	२	०	मासादि
२०	०	१०	१०	०	१०	१०	२०	१०	१०	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	

शुक्र की दशा सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

सू.	चां.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	घ्र.	प्र.
०	१	०	१	१	१	१	०	२	०	मासादि
१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०	३	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	

शुक्र की दशा चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

चां.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	घ्रु	ग्रह
१	१	३	२	३	२	१	३	१	०	मासादि
२०	५	०	२०	५	२५	५	१०	०	५	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	

शुक्र की दशा मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के	शु.	सू.	चां.	घ्र.	ग्रह
०	२	१	२	१	०	२	०	१	०	मासादि
२४	३	२६	६	२६	२४	१०	२१	५	३	
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	

शुक्र की दशा राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

रा.	बृ	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	ध्रु.	ग्रह
५	४	५	५	२	६	१	३	२	०	मासादि
१२	२४	२१	३	३	०	२४	०	३	९	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	

शुक्र की दशा बृहस्पति की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	ध्रु.	ग्र.
४	५	४	१	५	१	२	१	४	०	मासादि
८	२	१६	२६	१०	१८	२०	२६	२४	८	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	

शुक्र की दशा शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	ध्रु.	ग्र.
६	५	२	६	१	३	२	५	५	०	मासादि
०	११	६	१०	२७	५	६	२१	२	९	
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	

शुक्र की दशा बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	रा.	ध्रु.	ग्र.
४	१	५	१	२	१	५	४	५	०	मासादि
२४	२९	२०	२१	२५	२९	३	१६	११	८	
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	

शुक्र की दशा केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	ध्रु.	ग्र.
०	२	०	१	०	२	१	२	१	०	मासादि
२४	१०	२१	५	२४	३	२५	६	२९	३	
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	

मुद्रक—ला० राधेश्याम गुप्ता, द्वारा सत्संग प्रेस हाथरस।

मुद्रक—ला० राधेश्याम गुप्ता, द्वारा सत्संग प्रेस हाथरस।

वैद्यक व चिकित्सा ग्रन्थ ।

अमृत सागर—मूल्य ८), इलाजुल गुर्बा—कीमत ५) रुपया ।
बूटी प्रचार सजिल्द—जड़ी बूटियों के चित्रों सहित । कीमत २)
रस हजारा—इसमें रस भस्म बनाने के आसान तरीके दिये गये हैं । कीमत २॥), शारङ्गधर—भा० टी० ५॥)
जर्राही प्रकाश—फोड़े, फुन्सी चीर फाड़ व मलहम आदि का वर्णन व चिकित्सा है । कीमत ३॥)
पशु चिकित्सा—पशुओं के रोगों का वर्णन है । कीमत ३)
शालहोत्र बड़ा—सभी तरह के घोड़ों की चिकित्सा सम्बन्धी सचित्र पुस्तक कीमत २)
घरेलू चिकित्सा—(बड़ी) हर रोगों के प्रयोग में आने वाले छोटे २ नुसखे दिये गये हैं । कीमत ।॥)
नाड़ी ज्ञान तरंगणी अनुपान तरंगणी सहित कीमत १॥)
माधव निदान—भाषा टीका मूल्य ४). नाड़ी परीक्षा ।)

कामशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकें ।

कोकशास्त्र (पति पत्नि जीवन)-गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने वाली अपूर्व पुस्तक कीमत १)
कोकशास्त्र बड़ा जिल्द—कोक विद्या को समझने के लिये अद्भुत किताब कीमत २॥)

हुनर दस्तकारी व जादू की किताबें ।

स्वास्थ्य और योगासन—१॥), अत्तारी शिक्षा—।=)
खजाने रोजगार—॥=), चौदह विद्या—२),
व्यापार का खजाना—१),
इन्द्रजाल बड़ा-इसमें जन्त्र, मन्त्र, तन्त्र मेस्मैरेजम, तास के खेल व जादू वगैरह के विषयों को भली भांति लिखा गया है मू० २॥)

फर्म-रघुनाथदास पुरुषोत्तमदास अग्रवाल,

बुकसेलर्स छत्ता बाजार, मथुरा ।

॥ श्रीः ॥

हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला

१४९

श्रीमद्दैवज्ञपृथुयशोविरचिता-

षट्पञ्चाशिका

भट्टोत्पलकृतसंस्कृतटीकायुत-'विभा' नामक-

भाषाटीकासहिता।



प्रकाशकः-

जयकृष्णदास-हरिदास गुप्तः-

चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस,

बनारस सिटी।

१९४७

अस्मत् प्रकाशित ज्योतिष ग्रन्थाः—

THE
HARIDAS SANSKRIT SERIES
149

॥ श्रीः ॥

दैवज्ञपृथुयशोविरचिता—

षट्पञ्चाशिका

श्रीमद्भट्टोत्पलकृतया संस्कृतटीकया

तथा

ज्यौतिषाचार्य—ज्यौतिषतीर्थ—काव्यरत्न—झोपाह्व—पण्डित—
श्रीदीनानाथशास्त्रिकृत "विभा" हिन्दीटीकया च
समलङ्कृता ।

S'ATPAÑCHĀS'IKĀ

OF

PRITHUYAS'ODHARA

With a Sanskrit Commentary by Bhattotpala,

Edited with the Vibhā Hindi Commentary

BY

PT. S'RĪ DĪNĀNĀTHA JHĀ

PUBLISHED BY
JAYA KRISHNA DĀS HARIDĀS GUPTA
The Chowkhamba Sanskrit Series Office,
BENARES

द्वितीय संस्करण] मूल्य ।≡) [सं० २००४

भूमिका

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौति ' मूर्ध्नि संस्थितम् ॥

इत्यादि अनेक प्रमाणसे स्पष्ट है कि वेदाङ्गोंमें ज्यौतिष शास्त्रकी प्रधानता है, और त्रिस्कन्धात्मक ज्यौतिषशास्त्रमें भी प्रश्न सम्बन्धी विषयका सर्वत्र सभीको विशेष प्रयोजन होता है। क्योंकि जन्मपत्रीके विना भी केवल प्रश्न मात्रसे ही ज्यौतिष शास्त्रकी युक्तियों द्वारा सभी बातें विचारकर बतलायी जा सकती हैं। अतएव वराहमिहिरात्मज-दैवज्ञ-पृथुयशो-विरचित प्रश्न-विषयक विचारके लिये छोटी सी यह "षट्पञ्चाशिका" नामकी पुस्तक कितनी उपयोगी है यह आप लोगों को चिरकाल से हो विदित है। यद्यपि इस ग्रन्थकी बहुतसी टीकायें प्रकाशित हो चुकी हैं किन्तु वे मनमानी होनेके कारण फलादेशमें उपयुक्त नहीं होती, इसलिये मैंने उत्पल-दैवज्ञकी भट्टोत्पली टीकाकी छायानुसार ही भाषाटीकाके साथ २ जगह २ पर विशेष बातें भी आवश्यकतानुसार देदी है। यदि इससे आप महानुभावोंका कुछ भी प्रयोजन सिद्ध हुआ तो मैं निजी परिश्रम को सफल समझूंगा।

किन्तु—"भ्रान्तिर्वै मनुष्यधर्मः" इस नीतिके अनुसार यदि प्रकाशन कार्यमें कुछ त्रुटियां रह गई हों तो उसे आप लोग सुधार करते हुये मुझे क्षमा करेंगे—

यतः—"गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः" ॥ इति ॥

श्रीजानकी पंचमी
बनारस सिटी
सं. १९९८

विद्वज्जनानुचरः—
श्रीदीनानाथ झा
बरौनी, मुंगेर

अथ षद्पञ्चाशिकाविषयानुक्रमणिका ।

इति षट्पञ्चाशिकायाः विषयानुक्रमणिका ।

---

* श्रीः *

दैवज्ञपृथुयशोविरचिता

षट्पञ्चाशिका

भट्टोत्पलकृतया संस्कृतटीकया तथा 'विभा' नामक
हिन्दीटीकया च समलङ्कृता ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

केशाजार्कनिशाकरान् क्षितिजविज्जीवास्फुजित्सूर्यजान्
विघ्नेशं स्वगुरुं प्रणम्य शिरसा देवीं च वागीश्वरीम् ।
प्रश्नज्ञानवतो वराहमिहिरापत्यस्य सद्वस्तुनो
लोकानां हितकाम्यया द्विजवरष्टीकां करोत्युत्तमाम् ॥ १ ॥

कानीह शास्त्रे सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि भवन्तीत्युच्यते । आब्रह्मादिविनिश्चि[illegible]ति सम्बन्धः । लग्नहोराद्रेष्काणनवांशसप्तांशकादिना ग्रहसंस्थानदर्शनेन च जयपराजयलाभहतनष्टादिपरिज्ञानमभिधेयम् । अन्यत्र शुभाशुभकथनादिहलोकपरलोकसिद्धिरिति प्रयोजनम् ॥ किमेभिरुक्तैरित्युच्यते । "सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् । यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन न गृह्यते" ॥ कस्यास्मिन् शास्त्रेऽधिकारः । उच्यते । द्विजस्यैव यतस्तेन षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यो ज्ञातव्यश्च ॥ कान्यङ्गानीत्युच्यते ॥ शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः । छन्दसां लक्षणं चैव षडङ्गो वेद उच्यते" ॥ इति ॥ सतामयमाचारो यच्छास्त्रस्यारम्भेष्वभिमतदेवतानमस्कारं कुर्वन्ति तदयमपि आवन्तिकाचार्यो द्विजो वराहमिहिरात्मजः पृथुयशाः संक्षिप्तां प्रश्नविद्यां स्वसूत्रैः कर्तुकामः आदावेव भगवतः श्रीसूर्यस्य नमस्कारं स्वनामाख्यापनं च प्राह—

प्रणिपत्य रविं मूर्ध्ना वराहमिहिरात्मजेन पृथुयशसा ।
प्रश्ने कृतार्थगहना परार्थमुद्दिश्य सद्यशसा ॥ १ ॥

सं०—वराहमिहिराख्यस्याचार्यस्य आत्मजेन पुत्रेण पृथुयशसा पृथुयशा इत्यभिधानं यस्य तेन रविं सूर्यं मूर्ध्ना शिरसा प्रणिपत्य नमस्कृत्य प्रश्ने प्रश्नविषये इयं प्रश्नविद्या कृता रचिता । कीदृशी अर्थगहना अर्थोऽभिधेयं गहनो गुप्तो

इति षट्पञ्चाशिकायाः विषयानुक्रमणिका ।

प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा-संस्कृत-पुस्तकालय,

बनारस सिटी

* श्रीः *

दैवज्ञपृथुयशोविरचिता

षट्पञ्चाशिका

भट्टोत्पलकृतया संस्कृतटीकया तथा 'विभा' नामक हिन्दीटीकया च समलङ्कृता ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

केशाजार्कनिशाकरान् क्षितिजविज्जीवास्फुजित्सूर्यजान्
विघ्नेशं स्वगुरुं प्रणम्य शिरसा देवीं च वागीश्वरीम् ।
प्रश्नज्ञानवतो वराहमिहिरापत्यस्य सद्वस्तुनो
लोकानां हितकाम्यया द्विजवरष्टीकां करोत्युत्तमाम् ॥ १ ॥

कानीह शास्त्रे सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि भवन्तीत्युच्यते । आब्रह्मादिविनिश्रितमिदं वेदाङ्गमिति सम्बन्धः । लग्नहोराद्रेष्काणनवांशसप्तांशकादिना ग्रहसंस्थानदर्शनेन च जयपराजयलाभहतनष्टादिपरिज्ञानमभिधेयम् । अन्यत्र शुभाशुभकथनादिहलोकपरलोकसिद्धिरिति प्रयोजनम् ॥ किमेभिरुक्तैरित्युच्यते । "सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् । यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तस्केन न गृह्यते" ॥ कस्यास्मिन् शास्त्रेऽधिकारः । उच्यते । द्विजस्यैव यतस्तेन षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यो ज्ञातव्यश्च ॥ कान्यङ्गानीत्युच्यते ॥ शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः । छन्दसां लक्षणं चैव षडङ्गो वेद उच्यते" ॥ इति ॥ सतामयमाचारो यच्छास्त्रस्यारम्भेऽभिमतदेवतानमस्कारं कुर्वन्ति तदयमपि आवन्तिकाचार्यो द्विजो वराहमिहिरात्मजः पृथुयशाः संक्षिप्तां प्रश्नविद्यां स्वसूत्रैः कर्तुकामः आदावेव भगवतः श्रीसूर्यस्य नमस्कारं स्वनामाख्यापनं च प्राह—

प्रणिपत्य रविं मूर्ध्ना वराहमिहिरात्मजेन पृथुयशसा ।
प्रश्ने कृतार्थगहना परार्थमुद्दिश्य सद्यशसा ॥ १ ॥

सं०—वराहमिहिराख्यस्याचार्यस्य आत्मजेन पुत्रेण पृथुयशसा पृथुयशा इत्यभिधानं यस्य तेन रविं सूर्यं मूर्ध्ना शिरसा प्रणिपत्य नमस्कृत्य प्रश्ने प्रश्नविषये इयं प्रश्नविद्या कृता रचिता । कीदृशी अर्थगहना अर्थोऽभिधेयं गहनो गुप्तो

यस्याः सा अर्थगहना । किमर्थम् । परार्थमुद्दिश्य परेषां लोकानामर्थः प्रयोज... परार्थमुद्दिश्याभिधाय । कीदृशेन पृथुयशसा सद्यशसा सत् शोभनं यशः कीर्तिर्यस्य तथा भूतेन विद्याशौर्यादिगुणयुक्तेनेत्यर्थः ॥ १ ॥

भाषा—ग्रन्थारम्भमें वराहमिहिराचार्यके पुत्र दैवज्ञ पृथुयशा नामके आचार्य मङ्गलाचरण करते हैं–ज्यौतिःशास्त्रके प्रधानदेवता श्रीसूर्यनारायणजीको शिर झुकाकर प्रणाम करके, सर्वजनोपकारार्थ प्रश्नविषयक अर्थोंसे भूषित जो यह षट्पञ्चाशिका नामका ग्रन्थ उसकी रचना करते हैं। इस ग्रन्थमें केवल ५६ श्लोक होनेके कारण इसका नाम षट्पञ्चाशिका रक्खा गया ॥ १ ॥

अधुना लग्नचतुर्थसप्तमदशमानां चतुर्णां स्थानानां विचारप्रविभागमाह—

च्युतिर्विलग्नाद्धिबुकाच्च वृद्धिर्मध्यात्प्रवासोऽस्तमयान्निवृत्तिः ।
वाच्यं ग्रहैः प्रश्नविलग्नकालाद् गृहं प्रविष्टो हिबुके प्रवासी ॥ २ ॥

सं०—च्युतिः च्यवनं स्थानपरिभ्रंशः विलग्नात्तात्कालिकात्पृच्छालग्नात् च्युतिर्ज्ञेया । (पृच्छां पृच्छति अमुकस्थानान्मे च्युतिर्भविष्यति वा नेत्येतज्ज्ञेयम्) एवं हिबुकाच्चतुर्थस्थानाद् गृहसुहृत्सुखानां वृद्धिर्ज्ञेया । मध्यं दशमस्थानं तस्मात्प्रवासो ज्ञेयः । प्रवसनं प्रवास अन्यदेशगमनम् । अस्तमयात्सप्तस्थानान्निवृत्तिः प्रवासान्निवर्तनम् ॥ कथमेवमुच्यते चरस्थिरद्विस्वभावात्मकत्वेन । यत उक्तम्, प्रश्नविलग्नकालात् प्रश्नः पृच्छा, प्रश्ने विलग्नं प्रश्नविलग्नं तस्य कालः समयस्तस्मात् तेन चरराशौ लग्नगते स्वामिना युते दृष्टे वा शुभग्रहाणामन्यतमेन वा युते दृष्टे परिशिष्टग्रहसंयोगसन्दर्शनरहिते च्युतिर्भवति अन्यथा न भवत्येव । यत उक्तम्, वाच्यं ग्रहैः कारणभूतैः वाच्यं वक्तव्यं सर्वमेवैतत् ।

एवं स्थिरराशौ पापग्रहदर्शनयोगरहितेऽपि न भवत्येव । यतो वक्ष्यति "वृषसिंहवृश्चिकघटैर्विद्धि स्थानं गमागमौ न स्त" इति । तथा द्विस्वभावे भवति न वा स्वामिशुभग्रहदर्शनाधिक्यात्पापानामल्पत्वाच्च भवति अन्यथा न भवत्येव । एवं चतुर्थस्थानस्य सामान्यतयैव शुभग्रहस्वामिदर्शनयोगाद्गृहादीनां वृद्धिः अन्यथाऽपचयः । अथो प्रवासः । दशमस्थानस्य चरराश्यात्मकत्वात् पापग्रहदर्शनात्प्रवासः । अन्यथा स्वामिशुभग्रहदर्शनयोगाच्च न प्रवासः । सप्तमस्थानस्य चरराश्यात्मकत्वात् पापग्रहदर्शनान्न प्रवासान्निवृत्तिः, अन्यथा स्वामिसौम्यग्रहदर्शनयोगाच्च निवृत्तिः गृहं प्रविष्टो हिबुके प्रवासी हिबुके चतुर्थस्थाने प्रवासी विदेशस्थो नरो गृहं प्रविष्टो न वेति वक्तव्यम् । चतुर्थस्थाने स्वस्वामिदृष्टे युक्ते वा गृहं प्रविष्टोऽन्यथा

न प्रविष्ट इति। "हिबुके ग्रहे प्रविष्टे गृहं प्रविष्टं प्रवासिनं विद्धि। हि कास्तमयान्तरगे ग्रहे च पथि वर्तते पुरुषः" इति ॥ तस्य प्रविष्टस्य यावन्ति दिनानि व्यतीतानि तावन्त्येव गृहं प्रविष्टस्य प्रवासिनो गतानि, अथवा यावद्भिर्दिनैः स ग्रहश्चतुर्थस्थाने यास्यति तावद्भिरेव प्रवासी गृहं प्रविश्यति ॥ एतद्दूरगतस्य गमनं चेत्। यस्मिन्वक्ष्यमाणे याते सति वक्तव्यं नान्यथेति। एतच्च पुरस्ताद्विस्तरेणाभिधीयत इति ॥ २ ॥

भाषा—अब प्रश्नविशेषका उत्तर जिन २ भावों से करना चाहिये उसका विभाग करते हैं, जिसमें पहले केन्द्र (प्रथम चतुर्थ सप्तम और दशम) स्थानसे विचारणीय विषयोंको लिखते हैं। जैसे--लग्नसे च्युति (अर्थात् स्थानमें रहना या नहीं रहना, गमनागमन, वृष्टियोग, जेल से छूटने इत्यादि का) चतुर्थ स्थानसे वृद्धि (अर्थात् गृहसुख) मित्रस्थान, नौकरी, प्रवासीका आना इत्यादिका, दशमस्थानसे प्रवास (परदेशमें लाभालाभ, सुख-दुःख, स्थिरता इत्यादि) का विचार करना चाहिये, और सप्तम स्थानसे निवृत्ति (अर्थात् यात्रानिवृत्ति, शत्रुनिवृत्ति, रोग निवृत्ति, नष्टवस्तु प्राप्ति निवृत्ति) का विचार करना चाहिये। और समयके स्पष्टताके लिये यदि चतुर्थ और सप्तमके मध्यमें स्थित ग्रह हों तो प्रवासीको मध्यमार्गस्थित कहना चाहिये अथवा उक्तस्थानमें स्थानस्वामीको जितने दिन आये हुये होगये हो उतने दिन प्रवासीको भी समझना चाहिये और आनेमें जितने दिनमें ग्रह अपने स्थानको प्राप्त करेगा उतने दिन प्रवासीको भी आनेमें देर होगी॥२॥

विशेषः—सर्वत्र प्रश्नोत्तरके विचारमें स्थानका ध्यान आवश्यक है जैसे-चर, स्थिर, द्विःस्वभाव, ग्रहका शुभत्व, पापत्व तथा दृष्टि और योग या अन्य किसी तरहका सम्बन्ध होनेसे तदनुसार ही फल होता है ॥ २ ॥

अधुना तन्वादीनां द्वादशभावानां शुभाशुभज्ञानमाह—

यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्यास्ति वृद्धिः।
पापैरेवं तस्य भावस्य हानिर्निर्देष्टव्या पृच्छतां जन्मतो वा ॥ ३ ॥

सं०—("तनुधनसहजसुहृत्सुतरिपुजायामृत्युधर्मकर्मायव्ययाः इति द्वादश भावा उक्ताः। "कुजशुक्रज्ञेन्दुर्कज्ञशुक्रकुजजीवसौरियमगुरवः इति राश्यधिपा उक्ताः। तथा "क्षीणेन्दुर्कयमाराः पापास्तैः संयुतः सौम्य इति ग्रहाणां पापसौम्यत्वमुक्तम्। तथा दशमतृतीये नवपञ्चमे चतुर्थाष्टमे कलत्रं च पश्यन्ति पापवृद्धया फलानि चैवं प्रयच्छन्ति। सर्वमेतद्दृष्टिफलमुक्तं) तेन पृच्छासमये यः

कश्चिद्भावस्तन्वादिकः स्वामिनाऽऽत्मीयनाथेन दृष्टोऽवलोकितस्तस्य भावस्य वृद्धिरुपचयोऽस्ति विद्यते। अथवा तेनैव स्वामिना युतः संयुक्तस्तस्यापि वृद्धिरस्ति। सौम्यैर्वा स्यात्। सौम्यग्रहाणां बुधगुरुशुक्रपूर्णचन्द्राणामन्यमतेन वा युतो दृष्टो वा भावः स्याद्भवेत् तस्यापि वृद्धिरतिवर्द्धनं वक्तव्यम्। पापैरेवमिति। एवमनेन प्रकारेण पापैः पापग्रहैरपि रविक्रूरयुतबुधभौमसौरिक्षीणचन्द्राणामन्यतमेन यो यो भावो युक्तो दृष्टो वा तस्य भावस्य हानिरपचयो निर्देष्टव्या वक्तव्या। कस्मादिति। तदेवाह। पृच्छतां जन्मतो वेति। पृच्छतां पृच्छासमये नराणां, जन्मतो वा जायमानानां। तथा चोक्तं जातके "पुष्णन्ति शुभा भावांस्तन्वादीन् घ्नन्ति संस्थिताः पापाः। सौम्याःषष्ठेऽरिघ्नाः सर्वे नेष्टा व्ययाष्टमगाः इति। तथा "जन्मन्याधानकाले प्रश्नकाले वेति ॥ ३ ॥

भाषा—जो भाव अपने स्वामीसे युत हों या देखे जाते हों या शुभग्रह (बुध, गुरु, शुक्र, और अर्धाधिक चन्द्रमा) से युक्त हों या दृष्ट हों तो उनकी वृद्धि होती है, और यदि पापग्रह से (पापयुत बुध, अर्धाल्पचन्द्रमा शनि, मंगल, सूर्य) युक्त हो या देखे जाते हों तो उन भावोंकी हानि (नाश) होती है। यह जन्मकालिक और प्रश्नकालिक विचारमें समझना चाहिये ॥ ३ ॥

वि०—भावकी संज्ञा ग्रन्थान्तरमें इस प्रकार है। जैसे १ भावकी तनु, लग्न, मूर्त्ति, अङ्ग, उदय, कल्प और प्रथमभाव इत्यादि। २ भावकी धन, स्व, कोश, अर्थ, कुटुम्ब और द्वितीय। ३ भावकी पराक्रम, भ्रातृ, दुश्चिक्य, सहज और तृतीय। ४ भावकी अम्बा, हिबुक, बन्धु, पाताल, तुर्य, सुख, सुहृत्, मातृभाव और चतुर्थ इत्यादि। ५ भावकी सन्तान, तनय, आत्मज, वाक्, तनुज, बुद्धि, पुत्र, विद्या और पञ्चम इत्यादि। ६ भावकी शत्रु, रिपु, अरि, रोग, द्वेषी, वैरी, क्षत, मातुल और षष्ठ, इत्यादि। ७ भावकी स्त्री, मद, मदन, काम, अस्त, जामित्र, द्यून, जाया और सप्तम आदि। ८ भावकी आयु, मृत्यु, छिद्र, रन्ध्र, निधन, लग्नपद और अष्टम इत्यादि। ९ भावकी भाग्य, धर्म, गुरु, शुभ, तप, मन्त्र और नवम आदि। १० भावकी राज्य, कर्म, व्यापार, तात, आज्ञा, मान, आस्पद, गगन, व्योम, मध्य, मेपूरण और दशम। ११ भावकी लाभ, आय, आगम, प्राप्ति और एकादश। १२ भावकी व्यय, अन्त्य, प्रान्त्य, रिष्फ, अन्तिम और द्वादश आदि संज्ञायें हैं।

राशिस्वामी क्रमसे इस प्रकार है-मंगल, शुक्र, बुध, चंद्र, सूर्य, बुध, शुक्र,

मंगल, बृहस्पति, शनि, शनि और बृहस्पति ये ग्रह क्रमशः मेषादि द्वादश राशियोंके स्वामी होते हैं ।

सभी ग्रह अपने वर्तमान स्थानसे ७वेंको पूर्णदृष्टिसे देखते हैं । शनि ३।१० को, गुरु ९।५ को, और मंगल ४।८, स्थान को भी पूर्ण दृष्टिसे देखता है । अन्य-ग्रह ३।१० को एक पादसे, ९।५ को दो पादसे, ४।८ को तीन पादसे देखते हैं ।*

प्रत्येक भावसे विचारणीय प्रश्नोंका विभाग इस प्रकार है जैसे—

१—भावसे शरीर, वर्ण, यश, चिन्ह, आयु, उमर, जाति, स्वभाव, आराम, गुण, रूप, सुख, और दुःख, इत्यादि ।

२—भाव से, सोना, चांदी, रत्न, जवाहरात, मोती, अष्टधातु, द्रव्य, कुटुम्ब, और ऐश्वर्य, इत्यादि ।

३—भाई, बहन, नौकर, पराक्रम, वीर्य, भोजन और लाटरी इत्यादि ।

४—माता, घर, सवारी, खजाना, खेती, और लाटरी, इत्यादि ।

५—गर्भ, पुत्र, पुत्री, विद्या, बुद्धि, राज्यभाव, विनय और नीति, इत्यादि ।

६—शत्रु, रोग, चोर, भय, संग्राम, चतुष्पद् (गाय, भैंस, बैल, घोड़ा इत्यादि) क्रूरक्रिया, व्रण, और मातुल, इत्यादि ।

७—विवाह, स्त्री, व्यवहार, लड़ाई, और प्रवास, इत्यादि ।

८—मृत्यु, ऋण, मार्ग, संकट, और गृहच्छिद्र, इत्यादि ।

९—धर्म, यज्ञ, देवालय, तीर्थयात्रा, मन्त्रदीक्षा, वापी (बावली) कूप और तालाब, इत्यादि ।

१०-राज्य, पुण्य, पिता, व्यवहार, कर्म, वृत्ति, मुद्रा, मेघ, स्थान, सिक्का, इत्यादि।

११-द्रव्य लाभ, ब्याज, लाभ, पांडित्य, वाद और विवाद इत्यादि ।

१२-दान, खर्च, भोग, शान्ति मंगल क्रिया, उपासना और अनुष्ठान इत्यादि का विचार करना चाहिये ॥ ३ ॥

---

*तृतीयदशमे ग्रहो नवमपञ्चमेऽष्टाम्बुनी
क्रमाच्चरणवृद्धितः स्मरगृहं ततः पश्यति ॥
कुजः सितबुधौ शशी रविबुधौ सितक्ष्मासुतौ
गुरुर्यमशनी गुरुर्भवनपा इमे मेषतः ॥ १ ॥

अधुना प्रश्नसमये लाभादौ शुभाशुभज्ञानमाह—

सौम्ये विलग्ने यदि वाऽस्य वर्गे शीर्षोदये सिद्धिमुपैति कार्यम् ।
अतो विपर्यस्तमसिद्धिहेतुः कृच्छ्रेण संसिद्धिकरं विमिश्रम् ॥ ४ ॥

सं०—सौम्यानां शुभानां ग्रहाणां बुधगुरुशुक्रपूर्णचन्द्राणामन्यतमे विलग्ने, स्थिते, यदि वाऽस्य सौम्यग्रहस्य वर्गे तत्कालं विलग्नं प्राप्ते—"गृहहोराद्रेष्काणा-नवमभागद्वादशांशकस्त्रिंशः । वर्गः प्रत्येतव्यो ग्रहस्य यो यस्य निर्दिष्टः" इति वर्ग-लक्षणमुक्तम् । अथ शीर्षोदये पृच्छालग्ने "मेषाद्याश्चत्वारः सधन्विमकराः क्षपाबला ज्ञेयाः । पृष्ठोदया विमिथुनाः शिरसाऽन्ये ह्युभयतो मीनः ॥" इति राशिपृष्ठोदयत्वं शीर्षोदयत्वं चोक्तम् , एतेषामन्यतमे यदि विलग्ने पृच्छतो भवति तत्कार्यं सिद्धि साध्यतामुपैति गच्छति । अतो विपर्यस्तमिति । अतोऽस्मात्पूर्वोक्ताद्विपर्यस्तं विपरीत-मस्ति असिद्धिहेतुरसाध्यतायाः कारणम् । एतदुक्तं भवति । पापग्रहेण विलग्न-स्थेन पापवर्गे वा विलग्नगते पृष्ठोदये वा लग्नगते प्रष्टुः कार्यं न सिद्ध्यति ॥ कृच्छ्रेण क्लेशेन संसिद्धिकरं कार्यसाधकं भवति । एतदुक्तं भवति । पापसौम्यौ द्वावपि लग्नस्थौ भवतः पापसौम्यौ वर्गस्थौ वा उभयोदयो मीनो वा शीर्षोदयः पाप-युक्तः पापवर्गस्थो वा पृष्ठोदयः सौम्ययुक्तः सौम्यवर्गस्थो वा उभयोदयो वा तदा क्लेशेन सिद्धिकृद्भवति तत्र च बलाधिक्यान्निश्चय इति ॥ ४ ॥

भाषा—यदि लग्न में शुभग्रह (बुध, गुरु, शुक्र, पूर्णचन्द्र,) हो या शुभ ग्रहों का षड्वर्ग लग्नमें हो या शीर्षोदय राशि लग्न में पडे हों तो शीघ्र कार्यकी सिद्धि होती है । इससे विपरीत (उलटा) रहनेपर कार्यकी असिद्धि (नाश) कहना चाहिये । शुभग्रह पापग्रह दोनोसे सम्बद्ध हो तो कार्य कष्टसे साध्य होता है॥४॥

वि०—यहां वर्ग शब्दसे ग्रहोंका षड्वर्ग (गृह, होरा द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश) समझना चाहिये । सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और कुम्भ ये राशियां शीर्षोदय हैं । मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु, और मकर ये पृष्ठोदय हैं । तथा मीन शीर्षोदय पृष्ठोदय दोनो कहा जाता है ॥ ४ ॥

अधुना नष्टलाभज्ञानमाह—

होराऽस्थितः पूर्णतनुः शशाङ्को जीवेन दृष्टो यदि वा सितेन ।
क्षिप्रं प्रणष्टस्य करोति लब्धिं लाभोपयातो बलवाञ्छुभश्च ॥ ५ ॥

सं०—शशाङ्कश्चन्द्रः पूर्णमण्डलः शुक्लदशमीमारभ्य कृष्णपञ्चमीं यावत् पू-र्णतनुर्भवति । तथा च यवनेश्वरः "मासे च शुक्लप्रतिपत्प्रवृत्तेः पूर्णः शशी मध्यब-

लो दशाह्वे । श्रेष्ठो द्वितीयेऽल्पबलस्तृतीये सौम्यैस्तु दृष्टो बलवान् सदैव ॥ एवं पूर्णतनुः शशाङ्कः होरायां लग्ने स्थितः "होरेति लग्नं भवनस्य चार्द्धमिति" लग्नस्य होराव्यपदेशः । तत्रस्थः शशी जीवेन गुरुणा दृष्टोऽवलोकितो यदि वा सितेन शुक्रेण दृष्टो भवति । वदि वेत्ययं निपातो विकल्पे तदा क्षिप्रमाश्वेव प्रणष्टस्यापहृतस्य द्रव्यादेर्लब्धिं लाभं करोति । लाभोपयात इति । अथवा शुभः सौम्यग्रहो बलवान् वीर्ययुतो लाभे एकादशस्थाने उपयातः प्राप्तो भवति तथापि चशब्दात्क्षिप्रमेव नष्टस्य लब्धिं करोतीति ॥ ग्रहाणां स्थानदिक्चेष्टाकालबलं जातके प्रोक्तम् ॥ बलवान्मित्रस्वगृहोच्चैरित्यारभ्य स्वदिनादिष्वशुभशुभा इत्येतदन्तम् ॥ ५ ॥

भाषा—यदि पूर्णचन्द्र (अर्धाधिकचन्द्र) प्रश्नलग्नमें हो और गुरु अथवा शुक्रसे देखा जाता हो तो नष्ट वस्तुको शीघ्र लाभ करता है । अथवा बलवान् शुभग्रह एकादश भावमें हो तो शीघ्र लाभ करता है ॥ ५ ॥

वि०--ग्रह अपने क्षेत्रमें, मित्रक्षेत्रमें, अपने और मित्रके षड्वर्गोंमें, उच्चराशिमें, मूलत्रिकोणमें, नवांशमें, शुभग्रहसे दृष्टहोनेपर बलवान् होते हैं । चन्द्रमा और शुक्र स्त्रीराशि (वृषादिसमराशि) में सूर्य, मंगल, बुध, गुरु और शनि, ये पुरुषराशि (मेषादि विषमराशि) में बलवान् होते हैं । बुध और बृहस्पति लग्नमें स्थित रहने से पूर्व दिशा में, सूर्य और मंगल चौथ में रहने से दक्षिण दिशा में, शनि सातवेंमें रहनेसे पश्चिम दिशा में, चन्द्रमा, और शुक्र दशवें रहने से उत्तर दिशामें दिग्बली होते हैं तथा चन्द्रमा और सूर्य उत्तरायण(१)में अन्य भौमादि पाँचग्रह वक्री उज्वल तथा पुष्ट रहने से बलवान् होते हैं ।

सूर्य, शुक्र और बृहस्पति दिनमें, चन्द्रमा, मंगल और शनि रात्रिमें, बुध दिन और रात्रि दोनो में शुभग्रह शुक्लपक्षमें और अपने२ दिनादि(२)में, पापग्रह कृष्ण पक्षमें और अपने२ दिनादिमें बली होते हैं । इस बलको काल बल शास्त्रकारोंने कहा है ॥ ५ ॥

अधुना हृतनष्टमुष्टिगतचिन्तितानां धातुमूलजीवानां परिज्ञानमाह—

स्वांशं विलग्ने यदि वा त्रिकोणे स्वांशे स्थितः पश्यति धातुचिन्ताम् ।

---

(१) मकरसे लेकर मिथुनतक ६ राशि में सूर्य के रहनेसे उत्तरायण और शेष अर्थात् कर्क से धनुतक ६ राशिमें सूर्य के रहने से याम्यायण होता है ।

(२) सभी ग्रह अपने२ दिन, मास ऋतु, अयन वर्ष और कालहोरा में बली होते हैं ।

परांशकस्थश्च करोति जीवं मूलं परांशेपगतः परांशम् ॥ ६ ॥

सं०--यः कश्चिद्ग्रहस्तत्कालं स्वांशे आत्मीयनवांशके स्थितः विलग्ने प्रश्नलग्ने तत्कालोदितं स्वांशं तस्यैव ग्रहस्यात्मीयं नवांशकं तच्च पश्यत्यवलोकयति तदा प्रष्टुः धातुचिन्तां वदेत् । सुवर्णादिमृत्तिकान्तं धातुद्रव्यम् । एतदुक्तं भवति ॥ स्वांशकस्थो ग्रहः स्वांशकयुक्तं लग्नं पश्यति तदा धातुचिन्तां प्रवदेत् ॥ अथवा लग्नगतं स्वांशं न पश्यति तदा त्रिकोणे नवमस्थाने स्थितं तमेव स्वांशं पश्यति पञ्चमे स्थितं तमेव स्वांशं पश्यति नवमस्थानं पञ्चमस्थानं वा स्वांशकसमेतं पश्यतीत्यर्थः ॥ यतो लग्नपञ्चमनवमानामेक एवांशस्तुल्यकालमुदेति ॥ एतदुक्तं भवति ॥ स्वनवांशकस्थो ग्रहो लग्नपञ्चमनवमानामन्यतमं स्वांशकयुक्तं पश्यति तदा धातुचिंतां वदेत् ॥ तत्रापि धाम्याधाम्यप्रविभागो ग्रहांशकवशाद्वाच्यः पापग्रहांशकसमवस्थितस्य धाम्यम् । सौम्यग्रहांशकसमवस्थितस्याधाम्यमिति । परांशकस्थस्तु करोति जीवमिति ॥ यः कश्चिद्ग्रहपरनवांशकस्थोऽन्यग्रहनवभागावस्थितो विलग्नगतं स्वांशं पश्यति त्रिकोणयोरन्यतमगतं वा तदा जीवचिन्तां वदेत् ॥ पुरुषादिसरीसृपान्तो जीवः ॥ तत्रापि ग्रहयुक्तनवांशकवशात् द्विपदसरीसृपादिविभागः ॥ मिथुनकन्यातुलाधनुःपूर्वार्द्धकुम्भा देवा नराः पक्षिणश्च द्विपदा ज्ञेयाः ॥ मेषवृषसिंहधन्विपरार्धाश्चतुष्पदाः ॥ कर्कवृश्चिकमकरमीनाः सरीसृपाः ॥ तत्र मीनो ह्यपदः अन्ये तु बहुपदाः ॥ मूलं परांशोपगतः परांशमिति ॥ यः कश्चिद्ग्रहः परांशोपगतोऽन्यग्रहनवांशके समवस्थितो विलग्नगतं परनवांशकं त्रिकोणयोरन्यतमगतं वा पश्यति तदा मूलं करोति मूलचिन्तां प्रवदेत् ॥ एतद्यतः प्रायः सम्भवति तद्ग्रहदर्शनाज्ज्ञेयम् । वृक्षादितृणान्तं मूलं तत्रापि ग्रहयुक्तनवांशकवशात्स्थलजलत्वं ज्ञेयम् ॥ कर्कमकरमीनाः जलजाः । अन्ये तु सर्वे स्थलजा इति ॥ तथा च चिन्तासिद्धिप्रश्नज्ञानमुक्तम्—

"स्वांशे स्थितो विलग्ने यदा ग्रहः स्वांशकं निरीक्षेत ।
धातोस्तदातुचिन्तां करोति परसंस्थितो जीवम् ॥
परभागसन्निविष्टः परांशकं प्राग्विलग्नमायातम् ।
पश्यति मूलं प्रवदेदेवं नवपञ्चमे ज्ञेयम्" इति ॥ ६ ॥

भाषा—नष्ट वस्तुके प्रश्न विषयमें, तथा मानसिक और मौष्टिक प्रश्न विषय के विचार कहते हैं । यदि ग्रह अपने नवांशमें स्थित होकर लग्नमें या नवमें, पांचवेंमें स्थित स्वनवांश को देखता हो तो धातुकी चिन्ता कहनी चाहिये । एवं अन्यग्रहके नवांशमें रहकर स्वनवांश स्थित लग्न या नवम पञ्चमको देखता हो

तो जीवचिन्ता कहनी चाहिये, और अन्य ग्रह नवांशस्थित लग्न या नवम पञ्चमको यदि देखता हो तो मूल सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये ॥ ६ ॥

वि०—धातुप्रश्नमें सोना-चांदी इत्यादि अष्टधातुका विचार ग्रहके नवांशानुसार करना चाहिये। जीव विचारमें राशिके नवांशानुसार द्विपद-चतुष्पद-कीट जलचर-स्थलचर-सरिसृप-वनचर इत्यादि का भेद समझकर कहना चाहिये। मूल चिन्तामें भी वृक्षादिसे लेकर तृण पर्यन्त सभी मूल कहे जाते हैं वहां भी जलजवन्य-ग्राम्य-कण्टकित-पुष्पित-सदुग्ध सम्बन्धी विचार करके आदेश करना चाहिये ॥ ६ ॥

एतदेव पुनरपि प्रकारान्तरेणाह—

धातुं मूलं जीवमित्योजराशौ युग्मे विंद्यादेतदेव प्रतीपम्।
लग्ने योंऽशस्तत्क्रमाद्गण्य एवं संक्षेपोऽयं विस्तरात्तत्प्रभेदः ॥ ७ ॥

सं०—मेषमिथुनसिंहतुलाधनुःकुम्भा ओजराशयः। वृषकर्ककन्या वृश्चिकमकरमीनाः युग्मराशयः तत्र ओजे विषमे राशौ लग्नगते प्रथमनवांशकोदये धातुं प्रवेदत्। द्वितीये मूलं तृतीये जीवं पुनरपि चतुर्थे धातुं पञ्चमे मूलं षष्ठे जीवं पुनः सप्तमे धातुम् अष्टमे मूलं नवमे जीवमिति। युग्मे विन्यादेतदेव प्रतीदम्। युग्मे युग्मराशौ लग्नगते नवांशकक्रमेणैतदेव पूर्वोक्तं प्रतीप विपर्ययेण विन्यात् जानीयात्। तेन प्रथननवांशकोदये जीवं द्वितीये मूलं तृतीये धातुं, पुनश्चतुर्थे जीवं पञ्चमे मूलं षष्ठे धातुं, पुनः सप्तमे जीवं अष्टमे मूलं नवमे धातुमिति। एवमनेन प्रकारेण क्रमात्परिपाट्या लग्ने विलग्ने योंऽशो यो नवभागस्तत्कालमुदितः स यावद्गण्यो गणनीयः। अत्र च लग्ननवांशकवशात् प्राग्वद्योनिविभागः। केचित् द्रेष्काण त्रितये यथासंख्यं धातुं मूलं जीवमित्योजराशौ युग्मे विन्यादेतदेव प्रतीपमिति वर्णयन्ति। तच्चायुक्तम्। यस्मात्पुरस्तादाचार्य एव वक्ष्यति। अंशकाज्ज्ञायते द्रव्यमिति। अयं संक्षेपः समास उक्तः विस्तरात् व्यासेनास्यैवार्थस्य प्रभेदः स्पष्टता अभिधीयत इति ॥ ७ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां षट्पञ्चाशिकायां होराविवृतौ
संक्षेपाद् होराध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

भाषा—मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ ये विषम राशियां हैं। वृष कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये सम राशियां हैं। विषम राशियोंके (१।४।७) नवांशमें धातुचिन्ता तथा (२।५।८) नवांश में मूल चिन्ता और

(३।६।९) नवांशमें जीव चिन्ता करनी चाहिये और समराशिमें इसका विपरीत (उलटा) समझना चाहिये स्पष्टताके लिये चक्रमें देखो ॥ ७ ॥

स्पष्टार्थ चक्रम्—

नवांशसंख्या	१।४।७	२।५।८	३।६।९
विषमराशौ	धातु	मूल	जीव
समराशौ	जीव	मूल	धातु

इति वराहमिहिरात्मज-दैवज्ञ-पृथुयशा-विरचितायां षट्पञ्चाशिकायां टीकायां होराध्यायः प्रथमः समाप्तः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो गमागमाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावेव स्थानगमागमजीवित-मरणरोगशान्तिपराभिभवज्ञानमाह—

वृषसिंहवृश्चिकघटैर्विद्धि स्थानं गमागमौ न स्तः ।
न मृतं न चापि नष्टं न रोगशान्तिर्न चाभिभवः ॥ १ ॥

सं०—वृषसिंहवृश्चिकः प्रसिद्धाः घटः कुम्भः एते स्थिरराशयः । एतैर्वृषसिंह-वृश्चिकघटैः एतेषामन्यतमे लग्नं प्राप्ते स्थानं विद्धि जानीहि, प्रष्टुः स्थानलाभो भवति। गमागमौ न स्तः गमश्चागमश्च गमागमौ तौ न स्तः न भवतः । न मृतं मरणं न भवति जीवत्येव । न चापि नष्टं धात्वादिद्रव्यं धनम् अदर्शनपथि स्थितं न नष्टं न नाशं प्राप्तम् । अथवा विदेशस्थो नरस्तस्मात्स्थानान्न नष्टः । न रोगशान्तिः रोगो ज्वरादिस्तस्य शान्तिः शमनं व्याध्याभिभूतस्य न भवति । न चाभिभवः अभिभवः पराजयः स शत्रोः सकाशान्न भवति ॥ १ ॥

भाषा—इस श्लोकसे गमनागमन, जीवित–मृत्युरोगशान्ति, जय–पराजयका विचार लिखते हैं । यदि वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ लग्न प्रश्न कालिक लग्न हो तो स्थान-लाभके प्रश्नोत्तरमें स्थानलाभ होगा । गमनागमन विषयक प्रश्नों में गमना गमन नहीं होगा । रोगविषयक प्रश्नोंमें रोगी की मृत्यु नहीं होगी । नष्ट-वस्तुके प्रश्नों में नष्ट वस्तु प्राप्ति होगी, रोगीको रोग शान्ति नहीं होगा जय पराजयके प्रश्नों में पराजय नहीं होगा । प्रवासीके प्रश्नोंमें प्रवासी स्थिर है ऐसा कहना चाहिये ॥१॥

अथात्र विशेषमाह—

तद्विपरीतं तु चरैर्द्विशरीरैर्मिश्रितं फलं भवति।
लग्नेन्द्वोर्वक्तव्यं शुभदृष्ट्या शोभनमतोऽन्यत्॥ २॥

सं०—चराः मेष-कर्कट-तुला-मकराः तदित्यनेनानन्तरोक्तं विद्धि स्थान-मित्यादिकं सर्वं प्रत्यवमृश्यते। चरैः चराभिधानैः पृच्छालग्नस्थैस्तत्फलमनन्त-रोक्तं विपरीतं विपर्ययाद्भवति (पूर्वमुक्तं विद्धि स्थानमिति)। तत्र चरैः स्थान-प्राप्तिर्नास्तीति वाच्यम्। (गमाऽऽगमौ न स्त इति पूर्वमुक्तं) चरैर्गमाऽऽगमौ विद्येते। (पूर्वमुक्तं न मृतः) चरैर्मृत इति वक्तव्यम्। (पूर्वमुक्तं न चाऽपि न नष्टं) चरैर्नष्टमिति वाच्यम् (पूर्वमुक्तं न रोऽगशान्तिः) चरै रोगशान्तिर्भव-तीति वाच्यम्। (पूर्वमुक्तं न चाभिभवः) चरैरभिभवो भवतीति वक्तव्यम्। द्विशरीरैर्मिश्रितं फलं भवति, इति। द्विशरीराः द्विस्वभावाः मिथुन-कन्या-धन्वि-मीनाः तैः पृच्छालग्ने मिश्रितं फलं भवति। यत् स्थिरैरुक्तं यच्चरैरुक्तं तन्मि-श्रितमुभयं फलं भवति। भवति न भवतीति वा सर्वमेतद्यथोद्दिष्टम्। तत्राऽयं निश्चयः द्विस्वभावलग्ने प्रथमेऽर्धे स्थिरवत्फलं सर्वं वदेत् द्वितीयेऽर्धे चरवत्। यत-स्तस्य प्रथमार्धं स्थिरसमीपवर्ति द्वितीयं चरसमीपवर्तीति। तथाचास्मदीये प्रश्नज्ञाने-

"स्थिरराशौ लग्नगते स्थानप्राप्तिं वदेन्न चाऽऽगमनम्।
रोगोपशमो नाशो द्रव्याणां स्यात्पराभवो नाऽत्र॥
चरराशौ विपरीतं मिश्रं वाच्यं द्विमूर्त्युदये।
स्थिरवत्प्रथमेऽर्धे स्यादपरे चरराशिवत्सर्व"मिति॥

लग्नेन्द्वोर्वक्तव्यमिति। लग्नं प्रश्नलग्नम् इन्दुश्चन्द्रस्तयोर्लग्नेन्द्वोर्द्वयोरपि शुभ-दृष्ट्या सौम्यग्रहदर्शनेन शोभनं फलं वक्तव्यम्। देहमतोरूपत्वात् लग्नेन्दू सौम्य-दृष्टौ सम्पत्करौ भवतः। अतोऽन्यदिति अतोऽस्मादुक्ताद्विपरीतेऽन्यदशुभं वक्तव्यम्। अथो-तेन लग्नेन्दू पापदृष्टौ यदि भवतस्तदा सर्वपृच्छास्वशोभनं फलं वक्तव्यम्। अथो-देकैकस्मिन्नुभयदृष्टे मध्यमं फलं भवति॥ २॥

भाषा—यदि प्रश्नकालमें चर (मेष, कर्क, तुला, मकर,) लग्न हो तो प्रथम श्लोकमें कहे हुये सभी प्रश्नोंका उत्तर कहे गये उत्तरसे विपरीत (उलटा) कहना। जैसे स्थान लाभ नहीं होगा। गमनागमन होगा। रोगीकी मृत्यु होगी। नष्ट वस्तु नहीं मिलेगी। रोगकी शान्ति होगी और युद्धमें पराजय होगा। यदि प्रश्न कालमें द्विःस्वभाव राशि (मिथुन, कन्या, धनु, मीन) लग्न हो तो मिश्र अर्थात् चर तथा

स्थिर दोनोंका फल कहना। जैसे–द्विःस्वभावराशिके पूर्वार्द्धमें स्थिर राशिमें कथित फल सामान्य रूपसे होगा और द्विःस्वभावके उत्तरार्द्धमें चर राशिका सामान्य फल होगा, और प्रश्न कालिक लग्न तथा चन्द्रमाके ऊपर शुभग्रहका योग या दृष्टि हो तो शुभ, और पापग्रहका योग या दृष्टि हो तो अशुभ, मिश्र अर्थात् शुभग्रह, पापग्रह दोनों-का योग या दृष्टि हो तो मिश्रफल (मध्यम) कहना चाहिये ॥ २ ॥

वि०—द्विःस्वभावराशिका पूर्वार्द्ध स्थिरराशिका समीपवर्त्ती है तथा उत्तरार्द्ध चरराशिका समीपवर्त्ती है। इसलिये द्विःस्वभाव राशिमें यथार्थ चरस्थिरका फल नहीं होकर सामान्य चरस्थिरका फल होता है, क्योंकि यदि द्विःस्वभावराशिमें चरस्थिर राशिका ही फल ठीक २ होजाय तो चर, स्थिर राशिका फलादेश कहना व्यर्थ हो जायगा ॥ २ ॥

अधुना शत्रोर्मार्गनिवृत्तिज्ञानमाह—

सुतशत्रुगतैः पापैः शत्रुर्मार्गान्निवर्तते।
चतुर्थगैरपि प्राप्तः शत्रुर्भग्नो निवर्तते ॥ ३ ॥

सं०—सुतश्च शत्रुश्च सुतशत्रू अनयोर्गतैः सुतस्थानं पञ्चमं, रिपुस्थानं षष्ठम्, अनयोर्द्वयोरपि स्थानयोः एकस्मिन्वा पापैः सूर्यभौमशनिभिः प्रश्नलग्नाद्गतैः समवस्थितैः प्रष्टुः शत्रुः रिपुर्मार्गात्पथो निवर्तते गच्छति। तैरेव पापैः लग्नाच्चतुर्थस्थाने समवस्थितैः अपिशब्दः सम्भावनायां प्राप्तोऽपि शत्रुर्निकटस्थो भग्नः पराजितो निवर्तते प्रतीपं गच्छतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

भाषा--शत्रुके गमनागमन विषयक प्रश्नकालमें यदि प्रश्नलग्नसे पांचवें या छठें स्थानमें पापग्रह (सूर्य, मंगल, शनि और क्षीणल्प चन्द्रमा) हों तो आता हुआ भी शत्रु रास्तसे लौट जाता है। यदि चौथे स्थानमें पापग्रह हों तो आया हुआ शत्रु पराजित होकर लौट जाता है ॥ ३ ॥

अथ योगान्तरमाह--

झषालिकुम्भकर्कटा रसातले यदा स्थिताः।
रिपोः पराजयस्तदा चतुष्पदैः पलायनम् ॥ ४ ॥

सं०--झषो मीनः अलिर्वृश्चिकः कुम्भ-कर्कटौ प्रसिद्धौ एते रसातले लग्नाच्चतुर्थस्थाने स्थिताः एतेषामन्यतमः प्रश्नलग्नाच्चतुर्थस्थाने यदा समवस्थितो भवति तदा रिपोः शत्रोः पराजयोऽभिभवो भवति। चतुष्पदैः पलायनमिति। मेषवृषसिंहधन्विपरार्धाश्चतुष्पदाः एतेषामन्यतमे लग्नाच्चतुर्थस्थे शत्रोः पलायनमपसर्पणं भवतीत्यर्थः ॥ ४ ॥

भाषा--यदि प्रश्नलग्नसे चौथे स्थानमें मीन, वृश्चिक, कुम्भ और कर्क इनमें से कोई भी राशि हो तो शत्रुकी पराजय होती है, और यदि प्रश्नलग्नसे चौथे स्थानमें चतुष्पद (मेष, सिंह और धनुका उत्तरार्ध) राशियोंमें से कोई भी राशि हो तो शत्रु आकर भी भाग जाता है ॥ ४ ॥

अथ यायिनां शुभाशुभमाह—

चरोदये शुभः स्थितः शुभं करोति यायिनाम् ।
अशोभनैरशोभनं स्थिरोदयेऽपि वा शुभम् ॥ ५ ॥

सं०—चरोदये चरराश्युद्गमे तस्मिंश्च शुभग्रहाणां बुधजीवशुक्राणां अन्यतमः स्थितश्चेत् यायिनां गच्छतां शुभं श्रेयः करोति विदधाति । तस्मिन्नेव चरोदये अशोभनैः स्थितैः पापग्रहाणां रविभौमार्कजानामन्यतमे स्थिते तेषामेव यायिनामशोभनमश्रेयः करोति । स्थिरोदयेऽपि वा शुभम् । स्थिरराशीनामन्यतमस्योदये पापसंयुक्ते विकल्पेन शुभं भवति । तत्स्थानं पापग्रहस्य स्वक्षेत्रं उच्चं मूलत्रिकोणं मित्रक्षेत्रं वा भवति तदा शुभमन्यथा न शुभमित्यर्थः । केचित्स्थिरेऽष्टमेऽपि वा शुभमिति पठन्ति । स्थिरराशौ लग्नाष्टपापसंयुक्ते वा शुभं प्राग्वदिति ॥ ५ ॥

भाषा यदि प्रश्नकालमें चरराशि (मेष, कर्क, तुला, मकर) लग्नमें हो और शुभग्रहसे युक्त हो तो यायी (पहले चढ़ाई करने वाला) की विजय होती है । और यदि पापग्रहसे युक्त चरलग्न हो तो यायीका अशुभ देनेवाला होता है । एवं स्थिरलग्नमें बलवान् होकर (मित्रक्षेत्र, स्वक्षेत्र, स्वोच्च, मूलत्रिकोण आदिमें) पापग्रह हो तो यायीको शुभ फल होता है, किन्तु बलहीन (नीच, शत्रुगृह आदिमें) होकर स्थिरराशिमें रहनेसे यायीको अशुभफल होता है ॥ ५ ॥

वि०—सर्वत्र ग्रहसम्बन्धी विचारमें बलाबलके प्राधान्यसे ही फलादेश करना चाहिये । यही सभी आचार्यों का आदेश है ॥ ५ ॥

अथ शत्रोर्गमाऽऽगमज्ञानमाह—

स्थिरे शशी चरोदये न चाऽऽगमो रिपोर्यदा ।
तदाऽऽगमं रिपोर्वदेद्विपर्यये विपर्ययम् ॥ ६ ॥

सं०—स्थिरे स्थिरराशौ शशी चन्द्रो भवति चरोदये चरराशौ लग्नगते प्रश्नलग्नगते प्रश्नकाले यदा रिपोः शत्रोर्न चाऽऽगमः आगमो न विद्यते तदा तस्मिन्नेव प्रश्ने रिपोरागममागमनं वदेद्ब्रूयात् । विपर्यये विपर्ययमिति । अस्मादेव पूर्वोक्ताद्विपर्यये अन्यथात्वे विपरीतमेव वक्तव्यम् । एतदुक्तं भवति । चारे

शशिनि स्थिरराशौ लग्नगते यदि रिपोरागमनं श्रूयते तदा तस्मिन् प्रश्ने नागच्छतीति वदेत् ॥ ६ ॥

भाषा—यदि प्रश्न कालमें चरराशि लग्नमें हो तथा स्थिर राशिमें चन्द्रमा हो तो नहीं भी आया हुआ शत्रु शीघ्र आवेगा और प्रश्न कालमें स्थिर राशि लग्नमें हो तथा चर राशिमें चन्द्रमा हो तो विपरीत (उलटा) समझना चाहिये अर्थात् शत्रु आकरभी लौट जायगा ॥ ६ ॥

अथ शत्रुनिवृत्तिज्ञानमाह—

स्थिरे तु लग्नमागते द्विरात्मके तु चन्द्रमाः ।
निवर्तते रिपुस्तदा सुदूरमागतोऽपि सन् ॥ ७ ॥

सं०—स्थिरराशौ लग्नमागते तत्काललग्नं प्राप्ते, द्विरात्मके द्विस्वभावे राशौ यदा चन्द्रमा शशी भवति तदा रिपुः शत्रुः सुदूरमागतोऽपि सन् स्वस्थानात्सुतरां दूरमागतोऽपि निवर्तते प्रतीपं गच्छतीति । अपिशब्दः सम्भावनायाम् ॥ ७ ॥

भाषा—यदि प्रश्नकालमें स्थिरराशि लग्नमें हो तथा द्विःस्वभाव लग्नमें चन्द्रमा हो तो समीपमें आया हुआ भी शत्रु अवश्य लौट जाता है ॥ ७ ॥

अथ योगान्तरमाह—

चरे शशी लग्नगतो द्विदेहः पथोऽर्धमागत्य निवर्तते रिपुः ।
विपर्यये चाऽऽगमनं द्विधा स्यात्पराजयः स्यादशुभेक्षिते तु ॥८॥

सं०-चरे चरराशौ शशी चन्द्रमा भवति तथा लग्नगतः प्राग्लग्नस्थो द्विदेहो द्विस्वभावो राशिर्यदा तस्मिन्काले पथो मार्गस्यार्धमागत्य निवर्तते प्रतीपं गच्छति । तुशब्दोऽवधारणे । विर्यय इति। विपरीते शत्रोरागमनं द्विप्रकारेण स्याद्भवेत् । एतदुक्तं भवति । द्विस्वभावराशिस्थे शशिनि चरराशौ लग्नगते शत्रोरागमनं बलवन्न भवेत् । पराजयः स्यादशुभेक्षिते त्विति । तस्मिन्नेव विपरीते योगे विपरीते चन्द्रलग्ने वाऽशुभेक्षिते पापग्रहसन्दृष्टे शत्रोः सकाशात्प्रष्टुः पराजयोऽभिभवः स्याद्भवेत् । एतदुक्तं भवति । द्विस्वभावराशिस्थिते शशिनि चरराशौ लग्नगते द्वयोरपि पापदृष्ट्या शत्रोरागमनं द्विधा भवति समागमश्च पराजयं करोतीत्यर्थः ॥ ८ ॥

भाषा—प्रश्न कालमें यदि द्विःस्वभावराशि लग्नमें हो और चन्द्रमा चरराशिमें हो तो रास्तेमें आता हुआ शत्रु आधे रास्तेसे लौट जाता है । इससे विपरीतमें अर्थात् द्विःस्वभाव राशिमें चन्द्रमा हो और चरराशि प्रश्नलग्नमें हो

तो दो तरफसे शत्रुका आगमन होता है, एवं अशुभ (पाप) ग्रहके योग या दृष्टि होनेसे प्रश्न करनेवाले राजाका पराजय होता है ॥ ८ ॥

वि०-सर्वत्र उत्तम (शुभ) फलादेशके लिये शुभग्रहका योग या दृष्टि अपेक्षित है ॥ ८ ॥

अन्यदपि गमागमावाह—

अर्काऽऽर्किज्ञसितानामेकोऽपि चरोदये यदा भवति ।
प्रवदेत्तदाऽऽशु गमनं वक्रगतैर्नेति वक्तव्यम् ॥ ९ ॥

सं०—अर्कः आदित्यः आर्किः सौरिः ज्ञः बुधः सितः शुक्रः एषां मध्ये एकोऽपि ग्रहो यदा चरोदये चरराशौ लग्नगते स्थितो भवति तदा आशु क्षिप्रमेव यियासोर्गमनं वदेद् ब्रूयात् । रविवर्ज्यमन्येषामेकतमोऽपि यदा चरराशौ लग्नगतो भवति स च वक्रगतिः प्रतीपगतिमाश्रितो भवति तदा यियासोर्गमनं नेति वक्तव्यं याता न गच्छतीत्यर्थः ॥ ९ ॥

भाषा—यदि प्रश्नलग्न चरराशिका हो और सूर्य, शनि, बुध, शुक्र, इनमेंसे कोई एक भी ग्रहसे युक्त हो तो यायी राजाका गमन शीघ्र होता है और यदि यही ग्रह वक्री होकर युक्त हो तो गमन नहीं होता है ॥ ९ ॥

स्थिरोदये जीवशनैश्चरेक्षिते गमाऽऽगमौ नैव वदेत्तु पृच्छतः ।
त्रि पञ्च-षष्ठा रिपुसङ्गमाय पापाश्चतुर्था विनिवर्तनाय ॥ १० ॥

सं०—स्थिरराशौ लग्नगते तस्मिंश्च जीवशनैश्चरेक्षिते बृहस्पतिसौरीभ्यां दृष्टे पृच्छतः प्रष्टुः गमाऽऽगमौ नैव वदेत् ब्रूयात् शत्रुगमाऽऽगमौ नैव भवत इत्यर्थः । तस्मिन्नेव जीवशनैश्चरेक्षिते पापाः पापग्रहाः त्रिपञ्चषष्ठास्तृतीयपञ्चमषष्ठ-स्थानस्था भवन्ति तदा रिपोः शत्रोः सङ्गमाय भवन्ति, प्रष्टुः शत्रुणा सह संयोगो भवतीत्यर्थः । अस्मिन्नेव पूर्वोक्तयोगे पापा अशुभग्रहाः चतुर्थाश्चतुर्थस्थानस्था-स्तस्यैव शत्रोर्विनिवर्तनाय प्रतीपगमनाय भवन्ति शत्रुर्विनिवर्तत इत्यर्थः ॥ १० ॥

भाषा—यदि प्रश्नकालमें स्थिरराशि लग्नमें हो और गुरु या शनिसे देखा जाता हो तो प्रश्न करनेवाले राजाके शत्रुका गमन या आगमन कुछ भी नहीं होता है । यदि प्रश्न कालमें स्थिरलग्न हो गुरु या शनि से देखा जाता हो तथा तीसरे, पांचवें, छठे स्थानमें पापग्रह हो तो शत्रुसे समागम अर्थात् युद्ध होता है । यदि उपरोक्त योगमें पापग्रह चौथा हो तो शत्रु लौट जाता है ॥ १० ॥

अथान्यद्गमनाऽऽगमनाय योगमाह—

नाऽऽगच्छति परचक्रं यदाऽऽर्कचन्द्रौ चतुर्थभवनस्थौ ।

बुधगुरुशुक्रा हिबुके यदा तदा शीघ्रमायाति ॥ ११ ॥

सं०--अर्कः आदित्यः चन्द्रः शशी तौ लग्नाद्यदा चतुर्थभवनस्थौ चतुर्थस्थानगतौ भवतः तदा परचक्रं नाऽऽगच्छति शत्रुसमूहो नाऽऽयातीत्यर्थः। बुध-गुरु-शुक्राः हिबुके चतुर्थस्थाने यदा स्थिता भवन्ति तदा परचक्रं शीघ्रमाशु आयातीत्यर्थः ॥ ११ ॥

भाषा—यदि प्रश्नलग्न से चौथे स्थानमें सूर्य या चन्द्रमा बैठे हों तो शत्रुकी सेना नहीं आती है, और यदि प्रश्नलग्नसे चौथे स्थानमें बुध, गुरु, या शुक्र बैठे हों तो शत्रुकी सेना शीघ्र आती है ॥ ११ ॥

अथ योगान्तरमाह—

मेषधनुर्सिंहवृषा यद्युदस्था भवन्ति हिबुके वा।
शत्रुर्निवर्तते ते ग्रहसहिता वा विमुक्ता वा ॥ १२ ॥

सं०—एषां मेषधनुसिंहवृषाणां मध्ये यद्येकतम उदयस्थस्तत्काललग्नगतो भवति, वा इत्यथवा तात्कालिकात् प्रश्नलग्नाद्धिबुके चतुर्थस्थाने एषां मध्यादन्यतमो भवति, ते च ग्रहैः सहिताः समेता रहिता वा तदा तस्मिन्नेव काले शत्रुर्निवर्तते प्रतीपं गच्छतीत्यर्थः ॥ १२ ॥

भाषा—यदि प्रश्नकालमें मेष, धनु, सिंह और वृष इनमेंसे कोई भी लग्न हो, या इममेंसे कोई राशि चतुर्थ स्थानमें हो और ग्रहसे युक्त हो, या नहीं हो तो भी शत्रु रास्तेसे लौट जाता है ॥ १२ ॥

अन्यच्छत्रोरनागमनप्रकारमाह—

स्थिरराशौ यद्युदये शनिर्गुरुर्वा स्थितिस्तदा शत्रोः।
उदये रविर्गुरुर्वा चरराशौ स्यात्तदाऽऽगमनम् ॥ १३ ॥

सं०—उदये तत्काललग्ने स्थिरराशौ तत्रैव शनिः सौरिः गुरुः जीवो वा भवति तदा शत्रुः रिपुः स्वस्थानाच्चलितः तत्रैव तिष्ठति। अथवा चरराशौ लग्नगते तत्र च रविर्गुरुर्वा भवति तदा शत्रोरागमनम् आगमः स्याद्भवेत् ॥ १३ ॥

भाषा—यदि प्रश्नकालमें स्थिरराशि लग्नमें हो और शनि या गुरुसे युक्त हो तो आता हुआ शत्रु मार्गमें ही रुक जाता है, एवं प्रश्न कालमें यदि चर राशिका लग्न हो और सूर्य या गुरुसे युक्त हो तो शत्रुका आगमन अवश्य होता है ॥ १३ ॥

अथ यातुर्निवृत्तिज्ञानार्थं योगं श्लोकद्वयेनाह—

ग्रहः सर्वोत्तमबलो लग्नाद्यस्मिन्गृहे स्थितः।
मासैस्तत्तुल्यसंख्याकैर्निवृत्तिं यातुरादिशेत् ॥ १४ ॥

चरांशस्थे ग्रहे तस्मिन्कालमेवं विनिर्दिशेत् ।
द्विगुणं स्थिरभागस्थे त्रिगुणं द्व्यात्मकांशके ॥ १५ ॥

सं०—सर्वोत्तमबलो ग्रहः लग्नाद्यस्मिन्गृहे यावत्तमे स्थाने स्थितः सर्वेषामुत्तमबलः प्रधानबलोपेतः तत्तुल्यसङ्ख्याकैस्तत्तुल्या तत्तत्समा सङ्ख्याप्रमाणं येषां मासानां तैः जातुः जिगमिषोः निवृत्तिं निवर्त्तनं प्रवासान्निर्दिशेद्वदेत् ॥ १४ ॥

चरांशस्थ इति । तस्मिन्सर्वोत्तमबले ग्रहे चरांशस्थे चरराशिनवभागस्थे पूर्वोक्तकालमेव विनिर्दिशेत् । तत्तुल्यसङ्ख्याकैर्मासैः, स्थिरभागांशकस्थे स्थिरनवांश तमेव कालं द्विगुणं, द्व्यात्मकांशके द्विस्वभावनवांशके तमेव कालं त्रिगुणं वदेत् ॥ १५ ॥

भाषा—सर्वोत्तम बली ग्रह जो कोई भी हों, वह लग्नसे यात्राके समय जिस राशिमें स्थित हो उतने संख्यक महीनोंमें यायी राजा लौट कर आता है। किन्तु यदि बली ग्रह चर राशिका होवे तो, ऐसा कहना। और यदि स्थिर राशिमें स्थित हो तो उक्त कालको द्विगुणित करके कहना। यदि द्विःस्वभाव राशिमें स्थित हो तो उक्त कालको त्रिगुणित करके कहना। प्रवासीके लिये भी आगमन प्रश्नमें ऐसा ही समझना चाहिये ॥ १४–१५ ॥

वि०—ग्रह मित्रक्षेत्रेमें स्वोच्चमें स्वराशिमें मूलत्रिकोणमें रहनेसे ही बलवान् होते हैं, किन्तु जिस ग्रहमें अधिक बलशाली योग प्राप्त होगा वही ग्रह सर्वोत्तम बली कहा जायगा। यहां भी शुभग्रहके होनेसे कुशल पूर्वक आगमन कहना चाहिये, और पापग्रहके रहनेसे कष्टसे आगमन होगा ऐसा समझना चाहिये ॥

अत्रैव मतान्तरमाह—

यातुर्विलग्नाज्जामित्रभवनाधिपतिर्यदा ।
करोति वक्रमावृत्तेः कालं तं ब्रुवतेऽपरे ॥ १६ ॥

सं०—विलग्नं पृच्छालग्नं तस्माज्जामित्रभवनं सप्तमस्थानं तस्याधिपतिः स्वामी स यदा यस्मिन्काले वक्रं विपरीतं गमनं करोति तं कालं यातुर्जिगमिषोरावृत्तेरावर्तनस्य प्रवासान्निवृत्तिर्भवति । अपरे आचार्याः कृष्णादयो ब्रुवते कथयन्ति । वक्रं च ग्रहाणां यथासम्भवं योज्यम् । तथा च यातुः पृच्छालग्नात्सप्तभवनाधिपो यदा वक्रो भवति तदा वक्तव्यः प्रवासनिवृत्तये कालः ॥ १६ ॥

भाषा—कृष्णादि आचार्यों का मत है कि प्रश्नलग्नसे सातवें लग्नके स्वामी जब वक्री होता है तब यायी का अथवा परदेशीका आगमन होता है। भावार्थ यह है कि सप्तमेश जब वक्री होवे तब उसका आगमन समझना चाहिये ॥ १६ ॥

अथ शत्रोरागमने दिनप्रमाणमाह—

उदयर्क्षाच्चन्द्रर्क्षं भवति च यावद्दिनानि तावद्भिः ।
आगमनं स्याच्छत्रोर्यदि मध्ये न ग्रहः कश्चित् ॥ १७ ॥

सं०—उदयर्क्षमुदयलग्नं, चन्द्रर्क्षं चन्द्रराशिः पृच्छाकाले यत्र चन्द्रमाः स्थित स्तस्तमाददुदयर्क्षाच्चन्द्रर्क्षं यावत्सङ्ख्यं भवति तावत्संख्यैर्दिनैः शत्रोरागमनं स्यात् । यदि मध्य इति । तयोर्लग्नचन्द्रयोर्मध्येऽन्तरे यदि कश्चिद्ग्रहो न भवति तदेवं, ग्रहसम्भवे शत्रुरवश्यमेव नाऽऽयातीत्यर्थः ॥ १७ ॥

भाषा—प्रश्नलग्नसे, या प्रश्न नक्षत्रसे, जितने संख्यक चन्द्रलग्न या चन्द्रनक्षत्र हो उतने ही दिनोंमें यायीका, या प्रवासीका आगमन कहना, किन्तु यदि प्रश्नलग्न और चन्द्र लग्न, या प्रश्ननक्षत्र तथा चन्द्र नक्षत्रके मध्यमें कोई ग्रह नहीं रहे तो ऐसा कहना और ग्रहके रहनेसे आगमन नहीं होगा ऐसा समझना चाहिये ॥ १७ ॥

वि०—इस अध्यायमें शत्रुके गमनागमन सम्बन्धी जितने योग कहे गये हैं वे सब प्रवासीके सम्बन्धमें भी हो सकते हैं ।

इति वराहमिहिरात्मज-दैवज्ञ-पृथुयशो-विरचितायां-षट्पञ्चाशिकायां गमागमो द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ जयपराजयाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावेव जयपराजयज्ञानमाह—

दशमोदयसप्तमगाः सौम्यानगराधिपस्यविजयकराः ।
मारार्की ज्ञगुरुसिताः प्रभङ्गदा विजयदा नवमे ॥ १ ॥

सं०—उदयो लग्नं दशमसप्तमे प्रसिद्धे एतेषु स्थानेषु लग्नात्सौम्याः शुभग्रहाः गताः समवस्थिताः पृच्छालग्ने नगराधिपस्य पुरस्वामिनो राज्ञो विजयकराः विशेषेण जयं कुर्वन्ति । आरो भौमः आर्किः सौरिः एतौ प्रश्नलग्नात् नवमे स्थाने स्थितौ प्रष्टुः प्रभङ्गदौ प्रकर्षेण भङ्गं पलायनं ददतः । तथा ज्ञो बुधः गुरुः जीवः सितः शुक्रः एते लग्नान्नवमे स्थाने स्थिताः विजयदाः विशेषेण जयदा भवन्ति । प्रष्टुः सङ्ग्रामे विजयो भवतीत्यर्थः ॥ १ ॥

भाषा—यदि प्रश्नलग्नमें, या प्रश्नलग्नसे, सातवें अथवा दशवें स्थानमें शुभ ग्रह बैठे हों तो नगराधिप (स्थायी) की जय करनेवाले होते हैं, । यदि प्रश्नलग्नसे नवमें स्थानमें शनि तथा मंगल हो तो नगराधिपको भङ्ग करनेवाले

होते हैं, अर्थात् नगराधिप नगरसे पराजित होकर भाग जाता है। एवं यदि प्रश्न लग्नसे नवमें स्थानमें बुध, गुरु और शुक्र होवें तो नगराधिपका विजय देनेवाले होते हैं ॥ १ ॥

अथ नागरयायिनोः कस्य विजयो भवतीत्येतत्परिज्ञानमाह—

पौरास्तृतीयभवनाद्धर्माद्वा यायिनः शुभैः शुभदाः ।
व्ययदशमाये पापाः पुरस्य नेष्टाः शुभा यातुः ॥ २ ॥

सं०—पुरे भवाः पौराः नागराः पृच्छालग्नात्तृतीयभवनप्रभृतियद्राशिषट्कम-ष्टमं स्थानं यावत् तावन्नागरा ज्ञेयाः, एतद्राशिषट्कं पौराणां शुभाशुभत्वे ज्ञेय-मित्यर्थः । धर्माद्वा यायिनः धर्मान्नवमस्थानात्प्रभृतिराशिषट्कं द्वितीयं स्थानं यावत् तावत् स्थिता ज्ञेयाः एतद्राशिषट्कं यायिनां शुभाशुभत्वे ज्ञेयमित्यर्थः । येनादौ यात्रायामुद्योगः कृतः स यायी, येन पश्चात्कृतः स नागरः, वा शब्दोऽत्र चार्थे ज्ञेयः । शु ैः शुभदाः एते यथाविभागकल्पिता राशयो यस्य शुभैः सौम्यग्रहैः संयुक्ता भवन्ति तस्य शुभदा भवन्तीत्यर्थः । अर्थाद्यस्य पापैः संयुक्तास्तस्य परा-जयदाः । तथा च प्रश्ने ।

धर्माद्ये चक्रदले यायिनो नागरास्तृतीयादौ ।
विजयः सौम्ययुते स्यात्पुरभागे क्रूरसंयुते भङ्गः ॥

तथा चास्मदीये प्रश्नज्ञाने—

"नवमाद्ये चक्रदले विज्ञेयो यायिनस्तृतीयादौ ।
पौराः शुभसंयुक्ता भागे विजयः पुरे भङ्गः ॥" इति ।

अर्थादेव भागद्वयेऽपि पापसौम्यैर्युक्ते व्यामिश्रं फलं भवति । न जयो न परा-जय इति । व्ययदशमाये पापा इति । व्ययं द्वादशं दशमं प्रसिद्धम् आयमेकादशं समाहारे एकवद्भावः तत्र पापाः पापग्रहाः पृच्छालग्नात्समवस्थिता भवन्ति तदा पुरस्य नगरस्य नेष्टाः न शुभा भवन्ति । यातुर्यत्पुरं तस्य न शुभाः, यातुः पुनः शुभकराः उपचयकरा इत्यर्थः ॥ २ ॥

भाषा—प्रश्नलग्नके तृतीय स्थानसे अष्टम स्थान तक छः राशिकी पौर (स्थायी) संज्ञा है। एवं नवमसे द्वितीय राशि तक छः राशिकी यायी संज्ञा है। यदि यायी स्थानमें बली अधिक शुभग्रह होवें तो यायीको शुभ फल दायक होते हैं। और यदि स्थायी स्थानमें अधिक शुभग्रह होवें तो स्थायीको शुभ फल दायक होते हैं। इसके विपरीतमें (अर्थात् पाप ग्रहके रहनेसे) यायी स्थायी दोनों को

विपरीत फल समझना चाहिये। मिश्र में (शुभ, अशुभ दोनोंके रहनेसे) मिश्रफल समझना चाहिये, और यदि दशवें, ग्यारहवें, बारहवें स्थानोंमें पापग्रह होवें तो यायीके पुरबासियोंको अनिष्ट करता है। और राजाको शुभफल देनेवाला होता है॥२॥

वि०—पौर, या प्रतिवादी, स्थायी तथा मुद्दालेह उसको कहते हैं जिस पर मुकदमा दायर या चढ़ाई की जाती है। और यायी वादी तथा मुद्दई उसको कहते हैं जो मुकदमा दायर या चढ़ाई करता है॥

अथ सन्धिविरोधज्ञानार्थे योगान्तरमाह—

नृराशिसंस्था ह्युदये शुभाः स्युर्व्ययायसंस्थाश्च यदा भवन्ति।
तदाशु सन्धिं प्रवदेन्नृपाणां पापैर्द्विदेहोपगतैर्विरोधम्॥ ३॥

सं—नृराशयः पुरुषराशयः पुरुषाकृतयो राशयः नृराशयः मिथुनकुम्भतुलाकन्याः तथा च आचार्य एव ज्ञापकः—तुलाऽथ कन्या मिथुनो घटश्च नृराशयः'' इति। शुभाः सौम्यग्रहाः बुधशुक्रबृहस्पतयः एते उदये पृच्छालग्ने स्थिताः स्युर्भवेयुः अथवा त एव सौम्यग्रहाः नृराशिसंस्था व्ययायसंस्थाश्च भवन्ति, व्ययं द्वादशम् आयमेकादशं चशब्दः समुच्चये अनयोरपि संस्थाः समवस्थिता यदा भवन्ति तदा आशु क्षिप्रमेव नृपाणां सन्धिं सन्धानं प्रवदेत् ब्रूयात्। पापैरिति। पापा रविभौमशनिक्षीणचन्द्राः द्विदेहाः द्विस्वभावराशयः पापैरशुभग्रहैः द्विदेहोपगतैर्द्विस्वभावराशिषु समवस्थितैर्नृपाणामेवं विरोधं विग्रहं प्रवदेत्॥ ३॥

भाषा—यदि पुरुषसंज्ञक राशि (तुला-मिथुन-कन्या-कुम्भ-धनुका पूर्वार्द्ध) लग्नमें हो और शुभग्रहसे युक्त हो, अथवा पुरुषसंज्ञक राशि एकादश या द्वादश भावमें हो, और शुभ ग्रहसे युक्त हो तो यायी और स्थायी दोनोंमें सन्धि (मेल) होती है, और इन स्थानोंमें द्विःस्वभाव राशि (मिथुन-कन्या-धनु और मीन) हो और पाप ग्रहसे युक्त होवे तो यायी और स्थायीमें लड़ाई (युद्ध) विशेष बढ़तीहै॥३॥

योगान्तरमाह—

केन्द्रोपगताः सौम्याः सौम्यैर्दृष्टा नृलग्नगाः प्रीतिम्।
कुर्वन्ति पापदृष्टाः पापास्तेष्वेव विपरीतम्॥ ४॥

सं०—केन्द्राणि लग्नचतुर्थसप्तमदशमानि तेषूपगताः समवस्थिताः सौम्याः शुभग्रहाः अथवा त एव सौम्याः नृलग्नगाः नृराशिषु प्रागुक्तेषु स्थिताः सौम्यैः शुभग्रहैश्च दृष्टाः परस्परमवलोकयन्तीत्यर्थः। एवं विधाः प्रीतिं सन्धिं कुर्वन्ति निवृत्तिं प्रापयन्ति। तेषु केन्द्रेषु समवस्थिताः पापाः ते च पापदृष्टाः परस्परं पापैर-

वलोकिताः विपरीतं विपर्ययमप्रीतिं विग्रहं कुर्वन्ति ॥ ४ ॥

भाषा—यदि द्विपद संज्ञक राशिमें शुभग्रह हों, अथवा केन्द्रमें शुभग्रह हो, और शुभ ग्रहसे दृष्ट हो तो यायी और स्थायीमें प्रेमपूर्वक सन्धि होती है । और पापग्रह केन्द्रमें (१।४।७।१०) अथवा मनुष्य संज्ञक राशिमें हो तथा पापग्रहसे दृष्ट हो तो विशेष शत्रुता पूर्वक विरोध होता है ॥ ४ ॥

अथ सेनाऽऽगमनज्ञानमाह—

द्वितीये वा तृतीते वा गुरुशुक्रौ यदा तदा ।
आश्वेवाऽऽगच्छते सेना प्रवासो च न संशयः ॥ ५ ॥

सं०—प्रश्नलग्नाद्यदा द्वितीये वा तृतीये यथा तथा गुरुशुक्रौ जीवसितौ भवतः तदा चमूः सेना आश्वेवागच्छति क्षिप्रमेवायाति । प्रवासी अन्यदेशस्थः आश्वेवागच्छति न संशयः । निर्विकल्पं यथा स्यात्तथा ग्रहाणां क्रमविवक्षार्थं कदाचिद्द्वावेव द्वितीये वा द्वावेव तृतीये वा एको द्वितीये वा तृतीयेऽप्येक एवेति ॥५॥

भाषा—प्रश्नलग्नसे द्वितीय तृतीय स्थानमें गुरु या शुक्र अथवा दोनों हों तो यायी राजा या प्रवासी शीघ्र कुशल पूर्वक आवेगा इसमें सन्देह नहीं ॥५॥

वि०—इस अध्याय का उपयोग मुकदमा, विजय यात्रा प्रभृतिमें भी हो सकता है ॥

इति वराहमिहिरात्मज-दैवज्ञ-पृथुयशो-विरचितायां-षट्पञ्चाशिकायां-जयपराजयाध्यायस्तृतीयः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अधुना शुभाशुभलक्षणाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावेव प्रष्टुः शुभाशुभज्ञानमाह-

केन्द्रत्रिकोणेषु शुभान्वितेषु पापेषु केन्द्राष्टमवर्जितेषु ।
सर्वार्थसिद्धिं प्रवदेन्नराणां विपर्ययस्थेषु विपर्ययः स्यात् ॥१॥

सं०—केन्द्रेति । केन्द्राणि लग्न १ चतुर्थ ४ सप्तम ७ दशमानि, त्रिकोणसंज्ञे नवपञ्चमे, शुभाः सौम्यग्रहाः केन्द्रेषु त्रिकोणेषु शुभस्थितेषु, शुभाः स्थिता येषु सौम्यग्रहयुक्तेष्वित्यर्थः शुभान्वितोष्विति पाठः । तथा पापेषु पापग्रहेषु केन्द्राष्टमस्थानं वर्जयित्वा अन्यत्र समवस्थितेषु सत्सु नराणां मनुष्याणां सर्वार्थसिद्धिं वदेत् सर्वेषां निःशेषाणामर्थानां सिद्धिं साधनं वदेद्ब्रूयात । विपर्यय इति । एषु पापसौम्येषु विपर्यये विपरीते अन्यथास्थितेषु विपर्ययो वैपरीत्यमेव स्याद्भवेत् । एतदुक्तं भवति ।

यदा पापाः केन्द्रत्रिकोणाष्टमेषु भवन्ति सौम्याः केन्द्रत्रिकोणाष्टमवर्ज्यमन्यत्र भवन्ति तदा सर्वार्थानामसिद्धिं प्रवदेत् ॥ १ ॥

भाषा—प्रश्नकलिक लग्नसे यदि शुभग्रह केन्द्र (१।४।७।१०) या त्रिकोण (९।५) स्थान में हो और पापग्रह केन्द्र तथा आठवें स्थानसे दूसरे किसी स्थान में हो तो प्रश्नकर्त्ताके सर्वार्थ (अभीष्ट कार्य) की अवश्य सिद्धि होती है। इससे विपरीत अर्थात् केन्द्र त्रिकोणमें पापग्रह हो और केन्द्र त्रिकोण, अष्टम, से अन्यत्र किसी जगह शुभग्रह हो तो विपरीत अर्थात् प्रश्नकर्त्ताके अभीष्टकी हानि होती है ॥ १ ॥

अधुना लाभाऽलाभज्ञानमाह—

त्रिपञ्चलाभास्तमयेषु सौम्या लाभप्रदा नेष्टफलाश्च पापाः ।
तुलाऽथ कन्या मिथुनं घटश्च नृराशयस्तेषु शुभं वदन्ति ॥ २ ॥

सं०—तृतीयपञ्चमे स्थाने प्रसिद्धे लाभ एकादशम्, अस्तमयं सप्तमं एतेषु सौम्याः शुभग्रहाः प्रष्टुर्लाभप्रदाः । एवमेव त्रिपञ्चलाभास्तमयेषु पापा अशुभग्रहाः नेष्टफला अनिष्टमशोभनं फलं कुर्वन्ति अर्थनाशं समारभन्तीत्यर्थः । तुलेति तुला-कन्या-मिथुनाः प्रसिद्धाः घटः कुम्भ एते नरराशयः पुंराशयः एतेषु लग्नेषु सौम्यग्रहाधिष्ठितेषु शुभं भद्रं मुनयो वदन्ति कथयन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥

भाषा—प्रश्नकालिक लग्नसे तीसरे, पांचवें और सातवें स्थानमें शुभग्रह होवें तो शुभफल देते हैं। और यदि पापग्रह होवें तो अशुभ फल देते हैं। यदि तुला, कन्या, मिथुन, और कुम्भ, यह पुरुष (द्विपद) संज्ञक राशि प्रश्नकालिक लग्न हो और शुभग्रह से युक्त हो अथवा दृष्ट हो तो शुभ कहना चाहिये ॥ २ ॥

योगान्तरमाह—

स्थानप्रदा दशमसप्तमगाश्च सौम्या
मानार्थदाः स्वसुतलग्नगता भवन्ति ।
पापा व्ययायसहिता न शुभप्रदाः स्यु-
र्लग्ने शशी न शुभदो दशमे शुभश्च ॥ ३ ॥

सं०—सौम्याः शुभाः ग्रहाः लग्नाद्दशमे सप्तमे च स्थाने गताः समवस्थिताः प्रष्टुः स्थानप्रदाः स्युः । स्वशब्देन धनमुच्यते सुतलग्ने प्रसिद्धे तेषु स्थिताः सौम्याः मानार्थदाः स्युर्भवेयुः । पापा व्ययेति । पापा अशुभग्रहाः व्ययो द्वादशम्, आय एकादशं तयोर्द्वयोः सहिताः न शुभप्रदाः स्युः भवेयुः न शुभफलं प्रयच्छन्ति ।

लग्न इति। पापा इत्यनुवर्तते, शशी चन्द्रः पापो लग्ने स्थितो न शुभ इति शुभफलं न ददाति। दशमे स्थाने समवस्थितः शुभफलो भवति श्रेयस्करो भवतीत्यर्थः ॥३॥

भाषा—यदि प्रश्नकालिक लग्नसे शुभग्रह सातवें या, दशवें स्थानमें हों तो पृच्छकके लिये स्थान लाभकारक योग होता है। और प्रश्नलग्नसे, दूसरे तथा पांचवें स्थानमें शुभग्रह हों तो पृच्छकके लिये मान तथा द्रव्य लाभकारक योग होता है। यदि पापग्रह ग्यारहवें बारहवें, स्थानमें हो तो, अशुभ होता है। यदि क्षीण चन्द्रमा और पापग्रह लग्नमें हो तो अशुभ और दशवें में हो तो शुभ कहना चाहिये ॥ ३ ॥

विशेषः—सर्वत्र लग्न शब्दसे प्रनलग्न समझना चाहिये और फलादेश के लिये लग्न तथा ग्रहोंका बलाबल का ध्यान आवश्यक है। क्योंकि बलीग्रह ही फल देनेमें समर्थ होते हैं।

अन्यच्च शुभाशुभज्ञानमाह—

इन्दुं द्विसप्तदशमायरिपुत्रिसंस्थं
पश्येद्गुरुः शुभफलं प्रमदाकृतं स्यात्।
लग्नत्रिधर्मसुतनैधनगाश्च पापाः
कार्यार्थनाशभयदाः शुभदा शुभाश्च ॥ ४ ॥

सं०—द्विशब्देन द्वितीयं स्थानमुच्यते सप्तमदशमे प्रसिद्धे आय एकादशं रपुस्थानं षष्ठं त्रिशब्देन तृतीयं स्थानमुच्यते एतेषु द्वितीयतृतीय-सप्तम-दशमाऽऽय-रिपुषु संस्थितं, तमिन्दुं चन्द्रं गुरुर्जीवः पश्येत्तदा प्रष्टुः शुभफलं लाभादिकं मदाकृतं स्त्रीहेतुकं स्याद्भवेत्। लग्नत्रिधर्मेति। लग्नं पृच्छालग्नं त्रिशब्देन तृतीयस्थानं धर्मस्थानं नवमं सुतस्थानं पञ्चमं नैधनमष्टमं एतेषु स्थानेषु पापाः पापग्रहा गताः समवस्थिताः प्रष्टुः कार्यार्थनाशभयदा कार्यस्य कृतस्य अर्थस्य धनस्य नाशं विघातं भयं भीतिं ददतीत्यर्थः। शुभदाः शुभश्चेति। एष्वेव लग्नादिषु स्थानेषु शुभाः सौम्यग्रहाः समवस्थिताः शुभदाः शुभफलप्रदा इत्यर्थः ॥ ४ ॥

भाषा—प्रश्नकालिक लग्नसे दूसरे, सातवें, दशवें, ग्यारहवें छठें और तीसरे स्थान से किसी भी स्थानमें चन्द्रमा हो और गुरुकी दृष्टिसे युक्त हो तो लाभालाभ विषयक प्रश्नमें किसी स्त्री द्वारा लाभ होगा ऐसा कहना चाहिये। यदि प्रश्नलग्न में या प्रश्नलग्नसे तीसरे, नवमें, पांचवें और आठवें स्थानमें पापग्रह हों तो कार्य, और द्रव्यको नाश करनेवाले तथा भय देनेवाले होते हैं, शुभग्रहके रहनेसे शुभफल देनेवाले होते हैं ॥ ४ ॥

अधुना रोगाऽऽर्तस्य शुभाशुभज्ञानमाह—

शुभग्रहा सौम्यनिरीक्षिताश्च विलग्नसप्ताष्टमपञ्चमस्थाः ।
त्रिषड्दशाये च निशाकरः स्याच्छुभं भवेद्रोगनिपीडितानाम् ॥५॥

सं०—शुभग्रहा बुध-गुरु-शुक्राः विलग्नं सप्तमाष्टमस्थानानि प्रसिद्धानि एतेषु यथासम्भवं शुभग्रहाः समवस्थितास्ते च सौम्यनिरीक्षिताः सौम्यैः शुभग्रहैरेव दृष्टाः । एतदुक्तं भवति शुभग्रहदृष्टस्थानस्थाः परस्परं पश्यन्ति यदा तदा एष योगो, न केवलं यावन्निशाकरश्चन्द्रमास्त्रिषट्दशाये च स्याद्भवेत् तृतीयषष्ठदशमानि प्रसिद्धानि आयमेकादशमेतेषामन्यतमे चन्द्रमा भवति तदा रोगपीडितानां व्याधिगृहीतानां शुभमारोग्यं वदेद्ब्रूयात्, अर्थादेव योगासम्भवे सत्यशुभं वदेदिति, योगे सति शुभं ब्रूयात् ॥ ५ ॥

भाषा—यदि प्रश्नकालिक लग्नमें या प्रश्नलग्नसे सातवें, आठवें, और पांचवें, स्थानोंमेंसे किसी भी स्थानमें शुभग्रहको दृष्टिसे युक्त होकर शुभग्रह हो और तीसरे, छठें, दशवें, और ग्यारहवें स्थानमें चन्द्रमा हो तो रोगी विषयक प्रश्नमें रोगीको शीघ्र कल्याण होगा ऐसा कहना चाहिये, और विपरीत होनेसे अशुभ कहना चाहिये ॥ ५ ॥

इति वराहमिहिरात्मज-दैवज्ञ-पृथुयशो-विरचितायां-षट्पञ्चाशिकायां-
शुभाशुभाध्यायश्चतुर्थः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अधुना प्रवासचिन्ताध्यायो व्याख्यायते । तत्राऽऽदावागमनयोगमाह—

दूरगतस्याऽऽगमनं सुतधनसहजस्थितैर्ग्रहैर्लग्नात् ।
सौम्यैर्नष्टप्राप्तिं लब्धागमनं गुरुसिताभ्याम् ॥ १ ॥

सं०—सुतस्थानं पञ्चमं धनस्थानं द्वितीयं सहजस्थानं तृतीयं एतेषु स्थानेषु लग्नात्तात्कालिकात् ग्रहैरादित्यादिभिः सर्वैः समवस्थितैः दूरगतस्य विप्रकृष्टस्थितस्य आगमनं सम्प्राप्तिं वदेत् । सौम्यैर्नष्टप्राप्तिमिति । सौम्यैः सौम्यैर्ग्रहैः बुधगुरुसितक्षीणचन्द्रैः तेष्वेव स्थानेषु व्यवस्थितैः नष्टस्यापहृतस्य वस्तुनः प्राप्तिं लाभं वदेत् । तस्यैव प्रवासे नष्टमासीत् स एव वा प्रवासी नष्टोऽदर्शनं गतः तद्दर्शनं भवतीत्यर्थः । लब्धागमनं गुरुसिताभ्यामिति । गुरुर्बृहस्पतिः सितः शुक्रः आभ्यामेष्वेव स्थानेषु समवस्थिताभ्यां लब्धागमनं लघुनाऽल्पेनैव कालेन प्रवासिनामागमनं प्रवदेत् ॥ १ ॥

भाषा—यदि प्रश्नकालिक लग्नसे सूर्यादिक सभी ग्रह पांचवें, दूसरे और तीसरे इन स्थानों में होवें तो बहुत दूरमें स्थित जो प्रवासी वह शीघ्र लौट कर आता है, और उपरोक्त (५।२।३) स्थानोमें शुभग्रह (बुध, गुरु, शुक्र, और अर्द्धाधिकचन्द्रमा) होवें तो खोई हुई चीजका शीघ्र लाभ होता है, और जिस प्रवासीका कुछभी पता नही हो वह भी शीघ्र आता है। यदि उपरोक्त (२।३।५) स्थानोंमें केवल गुरु और शुक्र दो ही ग्रह होवें तो भी प्रवासी शीघ्र लौटकर आता है, और खोई हुई वस्तु शीघ्र प्राप्त होती है ॥ १ ॥

अथ योगान्तरमाह—

जामित्रे त्वथवा षष्ठे ग्रहः केन्द्रेऽथ वाक्पतिः।
प्रोषिताऽऽगमनं विद्यात्त्रिकोणे ज्ञे सितेऽपि वा ॥ २ ॥

सं०—जामित्रं सप्तमं, सप्तमस्थाने अथ षष्ठे वा पृच्छालग्नाद्यः समवस्थितः तथा चतुर्णां केन्द्राणां च मध्यादन्यतमे केन्द्रे वाक्पतिर्भवति तदा प्रोषितस्य प्रवासितस्याऽऽगमनं प्राप्तिः विद्याजानीयात्। त्रिकोणं नवपञ्चमेज्ञो बुधः, सितः शुक्र; बुधे शुक्रे वा त्रिकोणयोर्नवमपञ्चमस्थानयोरेवान्यतमस्थे द्वयोर्वा त्रिकोणस्थयोः प्रोषिताऽऽगमनं विद्यादिति ॥ २ ॥

भाषा—यदि प्रश्नलग्नसे सातवें या छठें स्थानमें कोई भी ग्रह हो और केन्द्र (१।४।७।१०) में बृहस्पति हो या त्रिकोण (९।५) में बुध या शुक्र हों तो प्रवासी शीघ्र लौटकर आवेगा ऐसा समझना चाहिये ॥ २ ॥

अथ योगान्तरमाह—

अष्टमस्थे निशानाथे कण्टकैः पापवर्जितैः
प्रवासो सुखमायाति सौम्यैर्लाभसमन्वितः ॥ ३ ॥

सं०--निशानाथश्चन्द्रमास्तस्मिन् प्रश्नलग्नादष्टमस्थे अष्टमस्थानं समवस्थिते कण्टकानि केन्द्राणि लग्नचतुर्थसप्तमदशमानि तैः पापवर्जितैः प्रवासी पथिकः सुखेनाऽक्लेशेनाऽऽयाति आगच्छति। सौम्यैः शुभग्रहैः केन्द्रस्थैः प्रवासी लाभसमन्वितः लाभयुतः सुखमायाति ॥ ३ ॥

भाषा--यदि प्रश्नलग्नसे आठवें स्थानमें चन्द्रमा हो और केन्द्र (१।४।७।१०) स्थान पापग्रहसे रहित हो तो प्रवासी सुखपूर्वक लौट कर आता है, और यदि केन्द्रमें शुभग्रह होवें तो प्रवासी बहुत द्रव्यसे युक्त होकर शीघ्र सुखपूर्वक लौट कर आता है ॥ ३ ॥

योगान्तरमाह—

पृष्ठोदये पापनिरीक्षते वा पापास्तृतीये रिपुकेन्द्रगा वा ।
सौम्यैरदृष्टा बधबन्धदाः स्युर्नष्टा विनष्टा मुषिताश्च वाच्याः ॥ ४ ॥

सं०—पृष्ठोदयाः मेष कर्कट-धन्वि-मकर-मीनाः पृष्ठोदये पृच्छालग्ने एतेषामन्यतमे तस्मिंश्च पापनिरीक्षते अशुभग्रहावलोकिते । वाशब्दोऽत्र चार्थे । एवं विधे योगे प्रवासिनो वधस्ताडनं बन्धो बन्धनं भवेत् । अथवा पापा अशुभग्रहाः लग्नात्तृतीयस्थाने स्थिताः सर्वं एते च सौम्यैः शुभग्रहैरदृष्टा अनवलोकितास्तदा प्रवासिनो नष्टास्तस्मात्स्थानादन्यदेशं गताः । अथवा पापा लग्नाद्रिपुस्थाने वा गतास्ते च सौम्यैरदृष्टास्तदा प्रवासिनो मुषिताश्चोरैर्वाऽपहृताः स्युर्भवेयुः वा शब्दो योगानां विकल्पार्थः । बधबन्धदाः स्युरिति पापानां विशेषणम् ॥ ४ ॥

भाषा - प्रवासी सम्बन्धी सभी प्रश्नोत्तरके लिये, यदि प्रश्नकालिक लग्न पृष्ठोदय (मेष, वृष, कर्क, धनु, मकर और मीन) राशिमें हो और पापग्रहसे दृष्ट हो अथवा पापग्रह तीसरे, छठें, पहले, चौथे, सातवें, दशवें, इनमेंसे किसी भी स्थानमें हो और शुभग्रहकी दृष्टिसे रहित हो तो प्रवासीका वध (मृत्यु) या बन्धन (जेल) या स्थान परिवर्त्तन होगया है अथवा उसकी मृत्यु होगई है, या उसका सर्वस्व हरण होगया है ।

वि०—एकादि पापग्रहके योग या दृष्टिके वशसे उपरोक्त फलका विचार तारतम्यसे करना चाहिये ॥ ४ ॥

अधुना प्रवासिनामागमनकालज्ञानमाह—

ग्रहो विलग्नाद्यतमे गृहे तु तेनाऽऽहता द्वादश राशयः स्युः ।
तावद्दिनान्यागमनस्य विद्यान्निवर्तनं वक्रगतैर्ग्रहैस्तु ॥ ५ ॥

सं०—विलग्नात्पृच्छालग्नाद्यतमे यावत्सङ्ख्ये राशौ यः कश्चिद्ग्रहः स्थितः स च स्पष्टगतिस्तिष्ठेत् तेन तत्प्रमाणेन द्वादश राशयः आहता गुणिताः कार्याः । एतदुक्तं भवति द्वादशसङ्ख्यमङ्कमास्थाप्य लग्नात्प्रभृतिग्रहान्तरं राशिसङ्ख्यया गुणयेत् तत्र यावत्सङ्ख्या भवति तावत्संख्यानि दिनानि प्रवासिनः आगमनस्य विद्याज्जानीयात् । तावद्भिर्दिनैः पथिक आगच्छतीत्यर्थः । निवर्तनं वक्रगतैरिति । अथ स ग्रहो वक्रगतिः प्रतीपगतिस्तदा तावत्संख्यैर्दिनैः प्रवासिनः प्रवासान्निवर्तनं भवति ।५।

भाषा--प्रवासीके आगमन सम्बन्धी प्रश्नमें, प्रश्नलग्नसे आगे जितने संख्यक राशिमें जो कोई भी ग्रह हों उस संख्या से, १२ को गुणाकरे जितना गुणन-

फल होवे उतने हीं दिनों में प्रवासी लौटकर आवेगा। अथवा जितने दिनोंमें वह ग्रह वक्रताको प्राप्त हो उतने ही दिनोंमें प्रवासीका आगमन समझना चाहिये ॥९॥

इति वराहमिहिरात्मजदैवज्ञपृथुयशोविरचितायां षट्पञ्चाशिकायां प्रवासचिन्ताध्यायः पञ्चमः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ नष्टप्राप्त्यध्यायो व्याख्यायते। तत्राऽऽदावेव चौरज्ञानमाह—

स्थिरोदये स्थिरांशे वा वर्गोत्तमगतेऽपि वा।
स्थितं तत्रैव तद्द्रव्यं स्वकीयेनैव चोरितम् ॥ १ ॥

सं०—स्थिरा वृष-सिंह वृश्चिक-कुम्भाः एषामन्यतमस्योदये तत्काललग्नतां प्राप्ते अथवा यस्य कस्यचिद्राशेरुदये तत्कालं स्थिरनवांशके वर्तमाने अथवा यस्य कस्यचिद्राशेर्वर्गोत्तमनवांशकोदये "वर्गोत्तमा नवांशाश्चरादिषु प्रथममध्यपर्यन्तगाः" इति वर्गोत्तमनवांशकानां लक्षणं प्रोक्तम्। एवं लग्नस्य वर्गोत्तमगते नवांशके वा यदपहृतं द्रव्यं नूनं तत् स्वकीयेनाऽऽत्मीयेनैव केनचिच्चोरितमपहृतं तच्च तत्रैव तस्मिन्नेव स्थाने स्थितम्। अन्यथा अपरेणापहृतं तस्मात्तत्स्थानाच्चलितमिति ॥१॥

भाषा—नष्ट वस्तु सम्बन्धी प्रश्नोत्तरके विचारमें यदि प्रश्नकालमें स्थिर (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ,) राशि लग्नमें हो या स्थिरराशिके नवांश लग्नमें हो, या वर्गोत्तम नवांश (चर राशिके प्रथम, स्थिर राशिके पञ्चम और द्विःस्वभाव राशिके नवम नवांश वर्गोत्तम नवांश कहे जाते हैं,) लग्नमें हो तो खोई हुई वस्तु उसी स्थानमें हैं और कोई निजी आदमी अर्थात् सेवकादिने चुराया है ॥ २ ॥

अधुना स्थानज्ञानमाह—

आदिमध्यावसानेषु द्रेष्काणेषु विलग्नतः।
द्वारदेशे तथा मध्ये गृहान्ते च वदेद्धनम् ॥ २ ॥

सं०—"द्रेष्काणकाः प्रथमपञ्चमनवाधिपानां"मिति द्रेष्काणलक्षणं प्रागुक्तम्। आदि द्रेष्काणः प्रथमः मध्ये द्वितीयः अवसाने तृतीयः विलग्नंपृच्छालग्नं विलग्नतः विलग्नात्तात्काललग्नादित्थं भूतेषु द्रेष्काणेषु यथासंख्यं हृतं धनं वित्तं द्वारदेशे तथा मध्ये गृहान्ते च धनं स्थितं वदेत्। एतदुक्तं भवति। लग्नस्य प्रथमद्रेष्काणोदये हृतं धनं द्वारदेशे स्थितं वदेत्। द्वितीये द्रेष्काणोदये गृहमध्ये ब्रह्मस्थानसमीपे तृतीये द्रेष्काणोदये गृहान्ते वेश्मपश्चिमभागे वदेद्बुधादिति ॥ २ ॥

भाषा—यदि प्रश्नलग्नमें प्रथमद्रेष्काण हो तो नष्ट वस्तु घरके द्वारदेशके ही समीपमें है, और द्वितीय द्रेष्काण हो तो गृहके मध्यभागमें नष्ट वस्तु स्थित है. और यदि तृतीय द्रेष्काण हो तो घरके पीछे या घरके बाहर कहीं नष्ट वस्तु गयी है ऐसा कहना चाहिये ॥ २ ॥

अधुना लाभालाभज्ञानमाह—

पूर्णः शशी लग्नगतः शुभो वा शीर्षोदये सौम्यनिरीक्षितश्च ।
नष्टस्य लाभं कुरुते तदाऽऽशु लाभोपयातो बलवाञ्छुभश्च ॥ ३ ॥

सं०—पूर्णः परिपूर्णमण्डलः शशी चन्द्रः स च लग्नगः पृच्छालग्ने समवस्थितः अथवा शीर्षोदये लग्नगते तत्रैव शुभः सौम्यग्रहः समवस्थितः स च सौम्यैः शुभग्रहैरेव निरीक्षितो दृष्टः भवति तदा आशु क्षिप्रमेव नष्टस्यापहृतस्य धनादेर्लाभं प्राप्तिं कुरुते विधत्ते । लाभ इति । अथवा लग्नाल्लाभे चैकादशे स्थाने शुभः सौम्यग्रहो बलवान्वीर्यवानुपयातः प्राप्तो भवति तथाऽपि च शब्दान्नष्टस्याऽऽशु लाभं कुरुते अर्थादेवोक्तयोगानामभावे हृतं न लभ्यत इति ॥ ३ ॥

भाषा—यदि प्रश्नलग्न में पूर्ण चन्द्रमा हो अथवा शुभग्रहकी दृष्टिसे युक्त होकर शीर्षोदय राशिके लग्नमें कोई शुभग्रह हो तो खोई हुई वस्तु शीघ्र लाभ होती है । और यदि कोई बलवान् शुभग्रह ग्यारहवें स्थानमें प्रश्नकालमें प्राप्त हों तो भी नष्ट वस्तु शीघ्र लाभ होती है ॥ ३ ॥

अधुना दिगध्वनोः प्रमाणमाह—

दिग्वाच्या केन्द्रगतैरसम्भवे वा वदेद्विलग्नर्क्षात् ।
मध्याच्च्युतैर्विलग्नान्नवांशकैर्योजना वाच्या ॥ ४ ॥

सं०—"प्राच्यादिशा रविसितकुजराहुयमेन्दुसौम्यवाक्पतयः" इति ग्रहाणां दिश उक्ताः तत्र केन्द्रगतैर्ग्रहैर्दिग्दिशा वाच्या वक्तव्या । तात्कालिकलग्नस्य यः कश्चिद्ग्रहः केन्द्रे समवस्थितः तस्य या दिक् तस्यां हृतं वित्तं गतं वदेत् । तद्यथा—सूर्ये लग्नचतुर्थसप्तमदशमानामन्यतमस्थानस्थे पूर्वस्यामेव, शुक्रे आग्नेयां, भौमे दक्षिणस्यां, राहौ नैर्ऋत्यां, सौरे पश्चिमायां, बुधे उत्तरस्यां, जीवे ईशान्यामिति । द्वयोर्बहुषु वा केन्द्रगतेष्वधिकबलादसम्भवे वा वदेद्विलग्नर्क्षात् "अजवृषमिथुन-कुलीराः पञ्चमनवमैः सहैन्द्राद्याः" इति राशीनां दिशः उक्ताः । असत्यविद्यमाने केन्द्रे ग्रहे विलग्नर्क्षात् विलग्नराशितो दिशो वदेद्ब्रूयादिति । तद्यथा—मेष-सिंह-धनुःषु लग्नेषु हृतं वित्तं पूर्वस्यां दिशि गतम् । एवं वृषकन्यामकरेषु

दक्षिणस्यां । मिथुनतुलाकुम्भेषु पश्चिमायां, वृश्चिक-कर्कट-मीनेषूत्तरस्यां । मध्या-च्च्युतैरिति । विलग्नं प्रश्नलग्नं तस्य नवांशका नवभागास्तैर्मध्यात्पञ्चमनवमांश-काच्च्युतैर्योजना वाच्या । एतदुक्तं भवति । प्रश्नलग्ने प्रथमनवांशकात्प्रभृति पञ्चमनवांशकं यावद्वर्तते तावद्गृहं वित्तं तस्मिन्नेव देशे प्रागुक्तायां दिशि गतं वदेत् । पञ्चमादंशकाद्यावन्तः परतोंशकाः अतीतास्तावन्ति योजनानि तद्वित्तं प्रागुक्तायां दिशि गतमिति ॥ ४ ॥

भाषा—नष्ट वस्तुकी दिशा और दूरी ज्ञानके विचारमें, जो बलवान् ग्रह केन्द्रमें स्थित हो उसके अनुसार दिशा जानना । जैसेः—सूर्यमें पूरब, चन्द्रमामें वायव्य, मंगलमें दक्षिण, बुधमें उत्तर, गुरुमें ईशान, शुक्रमें अग्निकोण, शनिमें पश्चिम, और राहुमें नैऋत्य कोणमें नष्ट वस्तु गई है ऐसा समझना । यदि बल-वान् ग्रह केन्द्रमें नही हो तो लग्न से ही दिशाका ज्ञान करना । जैसे—मेष-सिंह और धनु लग्नमें पूरब । वृष, कन्या, और मकर लग्नमें दक्षिण । तुला, कुम्भ, और मिथुन लग्न में पश्चिम तथा कर्क, वृश्चिक और मीन लग्नोंमें उत्तर दिशामें नष्ट वस्तु गई है । ऐसा समझना, और लग्न स्थित नवांशके द्वारा योजन प्रमाण कहना । जैसे प्रथमसे पञ्चम नवांश तक गृह (घर) में ही कहना, और आगे नवांश संख्यक योजनकी दूरीपर नष्टवस्तु स्थित है, ऐसा कहना चाहिये ॥ ५ ॥

इति वराहमिहिरात्मज-दैवज्ञ-पृथुयशो-विरचितायां-षट्पञ्चाशिकायां नष्टप्राप्त्यध्यायः षष्ठः समाप्तः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ मिश्रकाध्यायो व्याख्यायते । तत्राऽऽदावेव गर्भिणीपुत्रदुहितृजन्म-ज्ञानं वरस्य कन्यालाभज्ञानञ्चाह—

विषमस्थितेऽर्कपुत्रे सुतस्य जन्मान्यथाङ्गनायाश्च ।
लभ्या वरस्य नारी समस्थितेऽतोऽन्यथा वामम् ॥ १ ॥

सं०—अर्कपुत्रे शनैश्चरे प्रश्नलग्नाद्विषमस्थानस्थिते तृतीयपञ्चमसप्तमनव-मैकादशानि विषमस्थानानि एषामन्यतमस्थानस्थे प्रष्टुः सुतस्य जन्म प्रादुर्भावं वदेत् । नन्वत्र लग्नस्य कथं न विषमस्थानस्य गणना क्रियते-उच्यते अत्राऽऽ-चार्यो वराहमिहिरो ज्ञापकः तथा च "विहाय लग्नं विषमर्क्षसंस्थः सौरोऽपि पुंज-न्मकरो विलग्नात्" । अन्यथा अन्यप्रकारेण स्थितेऽर्कपुत्रे लग्नादङ्गनायाः स्त्रियाः

जन्म वदेत्। तेन द्वितीय-चतुर्थ-षष्ठा-ष्टम-दशम-द्वादशानामन्यतमे स्थाने स्थिते सौरे वरस्य नारी कन्या लभ्यैति वदेत्। समस्थिते लग्नात्समस्थाने वामं विपरीतं न लभ्यत इत्यर्थः ॥ १ ॥

भाषा—यदि प्रश्नकालिक लग्नसे शनैश्चर विषम (३।५।७।९।११) स्थानमें स्थित हो तो गर्भवतीके प्रश्नोत्तरमें पुत्रका जन्म कहना, और समस्थान (२।४।६।८।१०।१२) में हो तो कन्याका जन्म कहना। एवं विवाह सम्बन्धी प्रश्नोत्तरमें यदि प्रश्न लग्नसे विषम स्थानमें शनि हो तो वरको स्त्री लाभ होगी, और समस्थानमें हो तो स्त्री लाभ नहीं होगी ॥ १ ॥

अधुना विवाहज्ञानमाह—

गुरुरविसौम्यैर्दृष्टस्त्रिसुतमदायारिगः शशी लग्नात्।
भवति च विवाहकर्ता त्रिकोणकेन्द्रेषु वा सौम्याः ॥ २ ॥

सं०—गुरुर्जीवो रविः सूर्यः सौम्यो बुधः एतैर्दृष्टोऽवलोकितः कीदृशः त्रिसुतमदायारिगः त्रिशब्देन तृतीयस्थानं सुतस्थानं पञ्चमं मदस्थानं सप्तममाय एकादशमरिस्थानं षष्ठं लग्नादित्येषां स्थानानामन्यतमस्थाने गतः समवस्थितः शशी चन्द्रो गुरुरविसौम्यैर्दृष्टो यदि भवति तदा प्रष्टा विवाहस्य पाणिग्रहणस्य कर्ता विधाता भवति। त्रिकोणकेन्द्रेष्विति। अथवा सौम्याः शुभग्रहाः त्रिकोणकेन्द्रेषु नवपञ्चमलग्नचतुर्थसप्तमदशमेषु यथासम्भवं भवन्ति तदा प्रष्टुः विवाहो भवतीत्यर्थः। वा शब्दोऽन्ययोगव्यवच्छेदकार्थः ॥ २ ॥

भाषा—विवाह प्रश्नमें यदि प्रश्नकालिक लग्नसे चन्द्रमा तीसरे, पांचवें, सातवें, ग्यारहवें या छठें स्थान में गुरु, सूर्य, तथा बुधसे दृष्ट होकर स्थित हो तो विवाह होगा, अथवा शुभग्रह (गुरु, बुध, शुक्र, और अर्द्धाधिकचंद्रमा) केन्द्र (१।४।७।१०) या त्रिकोण (९।५) स्थान में हो तो भी विवाह अवश्य होगा ॥२॥

वर्षासमये वृष्टिज्ञानमाह—

चन्द्रार्कयोः सप्तमगौ सितार्की सुखेऽष्टमे वाऽपि तथा विलग्नात्।
द्वितीयदुश्चिक्यगतौ तथा च वर्षासु वृष्टिं प्रवदेन्नराणाम् ॥ ३ ॥

सं०—चन्द्रः शशी अर्कः आदित्यः अनयोः सप्तमगौ सितार्की शुक्रशनी यथासम्भवं यदि भवतः, अथवा विलग्नादेव तेनैव प्रकारेण तावेव सितार्की द्वितीयस्थाने दुश्चिक्ये वा भवतस्तयोर्वा स्थानयोस्तदा वर्षासु वृष्टिं वर्षणं वदेत् ॥ ३ ॥

भाषा—वर्षाऋतुमें वर्षा सम्बन्धी प्रश्नोत्तर विचारमें यदि चन्द्रमा, और

सूर्यसे सातवें स्थानमें शुक्र, और शनैश्चर हों, अथवा प्रश्नलग्नसे चौथे या आठवें या दूसरे या तीसरे स्थानमें शुक्र और शनि प्राप्त हों तो वर्षा अच्छी होगी ॥३॥

अधुना प्रष्टुः प्रश्नकाले वृष्टिज्ञानमाह—

सौम्या जलराशिस्थास्तृतीयधनकेन्द्रगाः सिते पक्षे ।
चन्द्रे वाऽप्युदयगते जलराशिस्थे वदेद्वर्षम् ॥ ४ ॥

सं०—कर्कमीनमकरकुम्भाः जलराशयः सौम्या शुभग्रहाः जलराशिषु स्थिताः सिते पक्षे शुक्ले मासार्द्धे पुनरर्थं विशेषः तृतीयधनकेन्द्रगा यदि भवन्ति तृतीयद्वितीयलग्नचतुर्थसप्तमदशमानि एतेषु यथा सम्भवं गताः। वा शब्दोऽन्ययोगापेक्षायाम् । अथवा उदयगते चन्द्रे तत्र जलराशिस्थे पृच्छायां च वर्षासु वृष्टिं प्रवदेत् ॥४॥

भाषा—वर्षाऋतुमें वर्षा सम्बन्धी प्रश्नोत्तर विचारमें यदि शुक्ल पक्ष हो और शुभग्रह जलचर राशि (मीन, कर्क, मकर, कुंभ) में स्थित होकर या प्रश्न लग्नसे तीसरे दूसरे या केन्द्र (१।४।७।१०) स्थानमें हो अथवा चन्द्रमा जलचर राशिमें हो या लग्नमें हो तो वर्षा अच्छी होगी ॥ ४ ॥

अथ गर्भिणीनां किं जायत इत्येतज्ज्ञानमाह—

पुंवर्गे लग्नगते पुंग्रहदृष्टे बलान्विते पुरुषः ।
युग्मे स्त्रीग्रहदृष्टे स्त्री बुधयुक्ते तु गर्भयुता ॥ ५ ॥

सं०—पुंस्त्री क्रूराक्रूराविति राशीनां पुंस्त्री सञ्ज्ञा जातके उक्ता। मेषमिथुनसिंहतुलाधन्विकुम्भाः पुंराशयः । वर्गलक्षणं प्रागुक्तम् । पुंवर्गे पुरुषराशिवर्गे लग्नगते तात्काललग्नतां प्राप्ते तस्मिन् पुंग्रहदृष्टे नरग्रहावलोकिते "क्लीबपती बुधसौरी चन्द्रसितौ योषितां नृणां शेषाः" इति ग्रहाणां पुंस्त्रीनपुंसकत्वमभिहितं । तेन पुंग्रहः (विभौमजीवाः एतेषामन्यतमेन लग्नगते दृष्टे तस्मिश्च तथाभूते लग्ने बलान्विते वीर्ययुक्ते च पुरुषो जायते । "अधिपयुतो दृष्टो वा बुधजीवनिरीक्षितश्च यो राशिः । स भवति बलवान् न यदा युक्तो दृष्टोऽपि वा शेषै"रिति लग्नबलमुक्तम् । युग्मे स्त्रीग्रहदृष्टे इति । युग्मे युग्मराशौ स्त्रीसञ्ज्ञके वृषादौ गते स्त्री ग्रहौ चन्द्रसितौ ताभ्यामन्यतमेनावलोकिते बलयुक्तं च स्त्री कन्या जायते । सामान्यप्रश्नलग्ने बुधयुक्ते बुधेन संयुक्ते स्त्री गर्भयुता सगर्भा वर्तते अद्यापि न प्रसूयत इत्यर्थः ॥ ५ ॥

भाषा—पुत्र और कन्या जन्म सम्बन्धी प्रश्नोत्तर विचारमें यदि पुरुष राशि (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, कुम्भ) बलवान् होकर लग्नमें हो और

पुरुष राशि सम्बन्धी षड्वर्ग भी पडे हों (अर्थात् षड्वर्गमें पुरुषांश वर्ग अधिक हो) और पुरुषग्रह (सूर्य, मंगल और गुरु) की दृष्टिसे युक्त हो तो पुत्र जन्म होगा और स्त्रीराशि (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन,) का लग्न स्त्री राशिके षड्वर्गाधिकसे युक्त होकर बली स्त्री कारक (चन्द्रमा, शुक्र) ग्रहसे दृष्ट हो तो कन्या जन्म कहना और सामान्यतः बुधको लग्नमें रहनेसे अभी प्रसूता नही हुई है ऐसा कहना ॥ ५ ॥

अथ प्रष्टुः कीदृशी स्त्री-पुरुषो वा चेतसि वर्तते इत्यस्य ज्ञानमाह—

कुमारिकां बालशशी बुधश्च वृद्धां शनिः सूर्यगुरू प्रसूताम् ।
स्त्रीकर्कशां भौमसितौ विधत्त एवं वयः स्यात्पुरुषेषु चैवम् ॥ ६ ॥

सं०—शुक्लप्रतिपत्प्रभृतिदशम्यन्तं यावच्छशी बालः । एकादशीप्रभृति कृष्णपञ्चमीं यावद्युवा । षष्ठ्याद्यमावास्यान्तं यावद्वृद्धः । तत्रपृच्छालग्नं यदि स बालशशी बालचन्द्रः पश्यति लग्ने वा तथाभूतः स्थितः तदा प्रष्टुः कुमारिकां वदेत् । एवमेव बुधः पश्यति तत्रावस्थितस्तथापि कुमारिकामर्थादेव, यौवनस्थे चन्द्रे यौवनोपेतां, वृद्धे वृद्धामिति । केचिद्बालां कुमारीं च शशी बुधश्चेति पठन्ति । शशी बालां करोति आपुष्पं पुष्पदर्शनं यावदित्यर्थः । बालां स्त्रियं बुधः कुमारिकामनूढां करोति । एवं शनिः सौरो विगतयौवनां जराभिभूतां करोति । सूर्योऽर्कः गुरुर्बृहस्पतिः एतौ प्रसूतां प्रसवयुतां स्त्रियं विधत्तः कुरुतः । भौमोऽङ्गारकः सितः शुक्रः एतौ कर्कशामतिदारुणां स्त्रिय कुरुतः एवमनेग प्रकारेण वयः शरीरावस्था स्याद्भवेत् । पुरुषेषु चैवमिति । पुरुषेष्वपि पृच्छासमये प्रष्टु वयोज्ञानमेवमनेन प्रकारेण वदेत् ॥ ६ ॥

भाषा—प्रश्न कर्त्ताकी कैसी स्त्री इच्छित है, इस प्रश्नोत्तरके विचारमें, यदि प्रश्न लग्नमें बाल चन्द्रमा अथवा बुध बैठा हो, या इनमेंसे किसी एककी भी लग्नपर दृष्टि हो तो पृच्छक कुमारिका स्त्रीकी इच्छा करता है, यदि प्रश्नलग्नमें युवा चन्द्रमा हो तो युवती, वृद्ध चन्द्रमा हो तो वृद्धा स्त्रीकी इच्छा करता है । यदि लग्नमें शनि हो या शनिकी दृष्टि हो तो वृद्धा स्त्रीकी इच्छा करता है, यदि सूर्य या गुरु हो तो प्रसुता स्त्रीकी इच्छा करता है, यदि मङ्गल अथवा शुक्र हो या उनकी दृष्टि हो तो कर्कशा तथा युवती स्त्री की इच्छा करता है, इस प्रकार वर्ष का भी ज्ञान करना चाहिये ॥ ६ ॥

विशेषः—शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे दशमीतक चन्द्रमा बालक रहता है । शुक्लपक्षकी एकादशीसे कृष्णकी पञ्चमी तक चन्द्रमा युवा रहता है, तथा

कृष्णपक्षकी षष्ठीसे अमावास्या तक चन्द्रमा वृद्ध रहता है।

इसी तरह स्त्री पुरुष दोनोंके इच्छित प्रश्नोत्तरमें अवस्थाका निर्णय भी किया जा सकता है, तथा चोर प्रश्नमें चोरकी और अन्यकी भी अवस्था का वर्ण क्रम जाना जा सकता है ॥ ६ ॥

अथ कस्य सम्बन्धिनी चिन्ता मे मनसि वर्तत इत्येतत्परिज्ञानमाह—

आत्मसमं लग्नगतैर्भ्राता सहजस्थितैर्ग्रहैर्लग्नात्।
माता वा भगिनी वा चतुर्थगैः शत्रुगैः शत्रुः ॥ ७ ॥
भार्या सप्तमसंस्थैर्नवमे धर्माश्रितो गुरुर्दशमे।
स्वांशपतिमित्रशत्रुषु तथैव वाच्यं बलयुतेषु ॥ ८ ॥

सं०—ग्रहैरादित्यादिभिः सबलैर्लग्नगतैर्लग्नस्थैः प्रष्टुः आत्मसमं स्वशरीरतुल्यः कश्चिन्मनसि वर्तत इति। तत्कार्यं वक्तव्यमित्येवं लग्नात्सहजस्थितैस्तृतीयगैः भ्राता, सुतगैः पञ्चमस्थानस्थैः सुतः पुत्रः, चतुर्थगैश्चतुर्थस्थानस्थैर्माता जननी भगिनी चेति वाच्यम्। शत्रुगैः षष्ठस्थानस्थैः रिपुचिन्ता ॥ ७ ॥

भार्येति—लग्नात्सप्तमस्थानाश्रितैः सबलैर्ग्रहैः पत्नी वाच्या। नवमे नवमस्थानस्थैर्धर्माश्रितो धर्मयुक्त इति चिन्ता वाच्या। दशमे गुरुराचार्य इति। स्वांशपतिरित्यादि। स्वश्चासावंशश्च स्वांश आत्मीयो नवभागस्तस्य पतिः स्वामी पृच्छालग्ने तत्कालं यो नवांशक उदितः तत्पतिर्यदा लग्नस्थो भवति तदा प्रष्टुः आत्मचिन्तेति वाच्यम्। अथ स्वांशपतिमित्रं तत्काललग्ने स्थितं तदा मित्रं चिन्तितमिति वाच्यम्। अथ स्वांशपतिशत्रुः रिपुस्तत्कालं लग्ने स्थितस्तदा शत्रुचिन्ता गतेति वाच्यम्। अथ निर्दिष्टस्थानेषु द्वौ ग्रहौ बहवो वा भवन्ति तदा तेषां मध्याद्यो बलयुतः स यत्र स्थितः तं प्रष्टुः चित्ते गतं स्थितमिति वाच्यम्। तथैव तेनैव प्रकारेण यथाभिहितेषु बलयुक्तेषु वीर्यवत्सु मध्यात्कार्यं वाच्यम्। 'शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवेः' इत्यादिना ग्रन्थे च जातके मित्रशत्रुविभागः प्रदर्शित इति ॥ ८ ॥

भाषा—इच्छानुसार चिन्तित प्रश्नोत्तरके विचारमें यदि प्रश्न लग्नमें कोई बलवान् ग्रह बैठा हो तो अपने समान किसी मनुष्यकी चिन्ता है। तीसरे स्थानमें हो तो भाई की, पांचवे स्थानमें हो तो सन्तान (पुत्र या पुत्री) की, चौथेमें हो तो माता या बहिनकी, छठें स्थानमें हो तो शत्रुकी, सातवेंमें हो तो स्त्रीकी,

नववें स्थानमें हो तो धर्म सम्बन्धकी, और दशवें स्थानमें हो तो गुरु या पिताके विषयकी चिन्ता है, ऐसा कहना। प्रश्नलग्नमें जो नवमांश हो उसका स्वामी यदि बलवान् होकर लग्नमें बैठा हो तो अपने विषयकी चिन्ता कहना, यदि नवांशपति का मित्र बली होकर बैठा हो तो मित्र सम्बन्धी चिन्ता कहना, नवांशपतिका शत्रु ग्रह यदि बलवान् होकर स्थित हो तो शत्रु सम्बन्धी चिन्ता कहना, यदि उपरोक्त स्थानोंमें एकाधिक ग्रह होवें तो बलवान् ग्रह और कारक तथा नवांश पतिके सम्बन्धानुसार फलादेश करना चाहिये ॥ ७-८ ॥

अधुना प्रवासचिन्ताज्ञानमाह—

चरलग्ने चरभागे मध्याद्भ्रष्टे प्रवासचिन्ता स्यात्।
भ्रष्टः सप्तमभवनात् पुनर्निवृत्तो यदि न वक्री ॥ ९ ॥

सं०—चराणां मेष-कर्कट-तुला-मकराणामन्यतमे लग्ने तत्र तत्कालं चर-भागे चरनवांशके उदितस्तस्मिंश्चरलग्ने मध्यात्पञ्चमनवांशकात् भ्रष्टे च्युते षष्ठा-दिकमंशं तत्र वर्तत इत्यर्थः। प्रष्टुः प्रवासचिन्ता स्याद्भवेत्। प्रवासनिमित्तं चिन्ता भवेदित्यर्थः। अत्रैव निश्चयमाह। भ्रष्ट इति। सप्तमभवनं पृच्छालग्नात्सप्तमो राशिस्तस्मात् तत्कालं यदि कश्चिद्ग्रहो भ्रष्टः प्रच्युतः चलितः स च भौमादिक-स्तदा प्रवासी पुनर्निवृत्तो निवर्तत इत्यर्थः। प्रवासचिन्ता तेन किन्तु न यास्यति। यदि न वक्रीति। योऽसौ सप्तमभवनाद्भ्रष्टग्रहः स यदि वक्री प्रतीपगतीर्न भवति तदा निवृत्त एव वाच्यः। अथ वक्री तदा निवृत्तो यास्यतीति वाच्यम् ॥ ९ ॥

भाषा—यदि चरलग्न या चरराशिका पांचसे आगे षष्ठादि नवांशमें प्रश्नका लग्न हो तो प्रवास चिन्ता है, और प्रवास होगा ऐसा कहना, यदि लग्नसे सातवें भावस्थित भौमादि ग्रह प्रश्नकालमें उस स्थानको त्याग करके आगे जाने वाला हो, और फिर वक्रगति होकर उस स्थानमें नहीं आनेवाला हो तो प्रवासकी, और प्रवासी प्रवाससे कब लौटेगा ऐसी चिन्ता कहना, और वह प्रवासी प्रवाससे अपने घर लौट आवेगा ऐसा कहना। यदि वक्री ग्रह फिर सप्तम स्थानमें आनेवाला हो तो वह प्रवासी घर लौटनेवाला है ऐसा समझना चाहिये ॥ ९ ॥

अथ कीदृश्या स्त्रिया सह मे संयोग आसीदित्येतज्ज्ञानमाह—

अस्ते रविसितवक्रैः परजायां स्वां गुरौ बुधे वेश्याम्।
चन्द्रे च वयः शशिवत् प्रवदेत्सौरेऽन्त्यजातीनाम् ॥ १० ॥

सं०—रविरादित्यः सितः शुक्रः वक्रोऽङ्गारकः एतेषामन्यतमे पृच्छालग्ना-

दस्ते सप्तमे स्थाने परजाया परपत्न्यां, परभार्यया सह संयोग आसीत्। एवं गुरौ जीवे स्थिते स्वामात्मीयां स्त्रियमिति प्रवदेत्। बुधे वेश्यां साधारणस्त्रियं। चन्द्रे चैवं साधारणस्त्रियमेव वदेत्। तथा तेनैव प्रकारेण सौरे शनैश्चरे सप्तमेऽन्त्यजातीनां निकृष्टजातीनां स्त्रियमगम्यामिति प्रवदेत्। वयः शशिवदिति। तासां सर्वासां स्त्रीणां शशिवच्चन्द्रवद्वयः शरीरावस्थां प्रवदेदिति। बालचन्द्रे बालां, यूनि चन्द्रे यौवनोपेतां, वृद्धे वृद्धां, चन्द्रप्रविभागः प्रागेव दर्शित इति ॥ १० ॥

भाषा--प्रश्नकर्त्ता कैसी स्त्रीसे प्रेम किया है इस प्रश्नोत्तरके विचारमें, यदि प्रश्नकालिक लग्नसे सप्तम स्थानमें सूर्य, शुक्र या मंगल हों तो किसी दूसरेकी स्त्रीसे प्रश्नकर्त्ताका संयोग हुआ है। यदि सप्तम स्थान में गुरु हो तो अपनी स्त्रीसे संयोग कहना। यदि बुध या चन्द्रमा हो तो वेश्या (रण्डी) के साथ संयोग कहना, शनि हो तो अन्त्यज (नीच) वर्णोंकी स्त्रीसे संयोग कहना, स्त्रीके अवस्था का प्रमाण चन्द्रमाके बाल्य, युवा, वृद्धके अनुसार कहना ॥ १० ॥

विशेषः—चन्द्रमाका बाल्य युवा और वृद्धका नियम षट्पञ्चाशिका अध्याय ७ श्लोक ६ के विशेष में लिखा है ॥ १० ॥

अथ रोगाऽऽर्तस्य परदेशस्थितिज्ञानमाह—

मन्दः पापसमेतो लग्नान्नवमे शुभैरयुतदृष्टः।
रोगाऽऽर्तः परदेशी चाऽष्टमगो मृत्युकर एव ॥ ११ ॥

सं०—मन्दः सौरः स च पापसमेतो रविभौमक्षीणचन्द्राणामन्यतमेन युक्तस्तथाभूतो लग्नात्पृच्छालग्नान्नवमे स्थाने स्थितस्तत्र च शुभैरयुतदृष्टः तत्र च शुभग्रहाणामन्यतमेन न युक्तो नाऽप्यवलोकितस्तदा रोगार्त्तः रोगो ज्वरादिस्तेनार्त्तः पीडितः परदेशेऽन्यस्मिन्ग्रामादौ स्थितः। तथाऽनेनैव लक्षणेन युक्तः सौरो लग्नादष्टमे स्थाने गते समवस्थितस्तदा तस्यैव रोगाऽऽर्त्तस्य मरणं करोति ॥ ११ ॥

भाषा—प्रवासीके कष्टादि अवस्थाके प्रश्नोत्तर विचारमें यदि शनैश्चर पापग्रहसे युक्त होकर या दृष्ट होकर प्रश्नलग्नसे नवमें स्थानमें हो और शुभग्रहके योग या दृष्टिसे रहित हो, तो प्रवासी परदेशमें कष्ट युक्त है, और यदि शुभग्रहकी योग या दृष्टिसे रहित होकर, पापग्रहसे युक्त या दृष्ट होकर शनि आठवें स्थानमें हो तो प्रवासीकी परदेशमें मृत्यु होगई ऐसा कहना ॥ ११ ॥

अथ कश्चित्पृच्छति मदीयः पिताऽन्यदेशस्थस्तत्र किमद्याऽपि तिष्ठति अथवाऽन्यदेशं गत इति एतज्ज्ञानमाह—

सौम्ययुतोऽर्कः सौम्यैः संदृष्टश्चाष्टमर्क्षसंस्थश्च ।
तस्माद्देशादन्यं गतः स वाच्यः पिता तस्य ॥ १२ ॥

सं०—अर्कः सूर्यः सौम्यैः शुभग्रहैर्युतः सहतिष्ठतस्तेषामन्यतमेन च दृष्टोऽवलोकितो भवति तथाभुतो लग्नाच्चाष्टमर्क्षसंस्थितस्तत्संस्थोऽष्टमस्थानमुपगतो भवति तस्माद्देशाद्ग्रामादिकादन्यं देशान्तरं गतः तस्य प्रष्टुः पिता जनकः प्राप्त इति वाच्यं, अन्यथा तत्रैव स्थितः ॥ १२ ॥

भाषा—यदि प्रश्नकर्त्ताके पिता प्रवासी हो तो प्रश्नोत्तरके विचारमें प्रश्नकालिक लग्नसे अष्टम स्थानमें सूर्य, शुभग्रह से युक्त या दृष्ट होकर स्थित हो तो प्रश्नकर्त्ताका पिता उस स्थानसे अन्यदेशको चलागया ऐसा कहना, अन्यथा अर्थात् शुभग्रहकी दृष्टि नहीं हो तो उसी स्थानमें है ऐसा कहना चाहिये ॥ १२ ॥

अधुना हृतस्यार्थस्य स्वरूपं तस्कारकालदिग्देशानां ज्ञानं तस्करस्य वयोरूपज्ञानञ्चाह—

अंशकाज्ज्ञायते द्रव्यं द्रेष्काणैस्तस्कराः स्मृताः ।
राशिभ्यः कालदिग्देशा वयो ज्ञातिश्च लग्नपात् ॥ १३ ॥

सं०—अंशकाल्लग्नस्य तत्कालिकस्य नवमभागाद्द्रव्यमपहृतं धातुमूलजीवाख्यं तज्ज्ञायते । एतत्पूर्वमेव व्याख्यातम् । "स्वांशेविलग्ने यदि वा त्रिकोण"इति । तस्य च राशितुल्यो वर्णो वक्तव्यः । तथा च लघुजातके प्रोक्तम् "अरुणसितहरितपाटलपाण्डुविचित्राः शितेतरपिशङ्गौ । पिङ्गलकर्बुरबभ्रुकमलिना रुचयो यथासंख्य"मिति । तस्य च दीर्घमध्यह्रस्वत्वं नवांशकवशाज्ज्ञेयम् । तेन च कुम्भ-मीन-मेष-वृषा-ह्रस्वाः, मिथुन-कर्कट-धन्वि-मकराः मध्याः सिंह-वृश्चिक-कन्या-तुला दीर्घास्तथा चास्मदीये प्रश्नज्ञाने—

"मेषवृषकुम्भमीना ह्रस्वा युगकर्किचापधरमकराः ।
मध्या तथा मुनीन्द्रैर्हरियुवतितुलालयः स्मृता दीर्घाः" ॥

इति ह्रस्वं परिवर्तुलं मध्यमायतं दीर्घम् । अंशकपतौ सबलेऽन्तरसारमल्पबले सुखी नीचस्थितेऽस्तमिते वाऽपि नष्टप्रायमेव । एवमंशकाद्द्रव्यं ज्ञायते । द्रेष्काणैर्लग्नत्रिभागैस्तस्कराश्चौराः स्मृता उक्ताः । यादृशी द्रेष्काणस्याकृतिस्तादृशी एव तस्करस्य वक्तव्या । तद्यथा—

मेषप्रथमे द्रेष्काणे पुरुषः परशुहस्तः कृष्णो रक्तनेत्रः रौद्रः । द्वितीये द्रेष्काणे स्त्री लोहिताम्बरा स्थूलोदरी दीर्घमुखैकपादा । तृतीये द्रेष्काणे पुमान् क्रूरः कपिलो रक्ताम्बरः दण्डहस्तः ।

वृषस्य प्रथमद्रेष्काणे स्त्री कुञ्चितलूनकेशा स्थूलोदरी दीर्घपादा । द्वितीये नरः कलावित् लाङ्गलशकटकर्मणि कुशलः । तृतीये नरो बृहत्कायः ।

मिथुनस्य प्रथमद्रेष्काणे स्त्री रूपान्विता हीनप्रजा । द्वितीये पुरुषः उद्यानसंस्थितः अपत्यरहितः कवची धनुष्मान् । तृतीये पुमान् रत्नभूषितः पण्डितो धनुष्मान् ।

कर्कटप्रथमे पुरुषः हस्तिसदृशशरीरः सूकरमुखः । द्वितीये स्त्री यौवनोपेता कर्कशा अरण्यस्था । तृतीये पुरुषः सर्पवेष्टितः नौस्थः सुवर्णाभरणान्वितः ।

सिंहप्रथमे शाल्मलीसंस्थो गृध्रजन्तुः शुकाननः । द्वितीये पुरुषो धनुष्मान् नताग्रनासः । तृतीये नरः कूर्ची कुञ्चितकेशः दण्डहस्तः ।

कन्याप्रथमे स्त्री पुष्पयुता पूर्णेन घटेनोपलक्षिता दग्धाम्बरा गुरुकुलं वाञ्छति । द्वितीये पुरुषो गृहीतलेखनिः श्यामो विस्तीर्णकार्मुकः । तृतीये स्त्री गौरा कुम्भकुचा घटहस्ता देवालये प्रवृत्ता ।

तुलाप्रथमे पुरुषः तुलाहस्तः वीथ्यापणगतः उन्नतहस्तः भाण्डं चिन्तयति । द्वितीये पुरुषः कलशधरो गृध्रमुखो क्षुधितस्तृषितश्च । तृतीये पुरुषः दीर्घमुखो धनुष्पाणिः ।

वृश्चिकप्रथमे स्त्री नग्ना स्थानच्युता सर्पनिबद्धपादा मनोरमा । द्वितीये भर्तृकृते भुजङ्गावृतशरीरस्थानमुखान्यमभिवाञ्छति । तृतीये पुरुषश्चिपिटवक्त्रः ।

धनुःप्रथमे पुरुषो धनुष्मान् । द्वितीये स्त्री सुरूपा गौरवर्णा । तृतीये पुरुषो दण्डहस्तः कूर्ची ।

मकरप्रथमे पुरुषो रोमशः स्थूलदन्तो बन्धभृत् रौद्रवदनः । द्वितीये स्त्री श्यामाऽलङ्कारान्विता । तृतीये पुरुषः दीर्घमुखो धनुष्मान् ।

कुम्भप्रथमे पुरुषः गृध्रतुल्यमुखः सकम्बलः । द्वितीये स्त्री रक्ताम्बरा । तृतीये पुरुषः श्यामः ।

मीनप्रथमे द्रेष्काणे पुरुषो नौस्थः । द्वितीये स्त्री गौरा नौस्था । तृतीये द्रेष्काणे पुरुषः नग्नः मांससर्पवेष्टिताङ्गः ।

एतद्बृहज्जातके वराहमिहिरेण प्रोक्तम् । एवं द्रेष्काणैस्तत्कारा उक्ता इति । राशिभ्य उक्ता इति । राशिभ्यः कालदिग्देशः इति । राशीनां कालविभागः— "मेषाद्याश्चत्वारः सधन्विमकराः क्षपाबला ज्ञेया" इति जातके उक्तम् । तेन मेषवृषमिथुनकर्कटधन्विमकराणामन्यतमे लग्ने संस्थे रात्रावपहृतम् । सिंहकन्यातुलावृश्चिककुम्भमीनानामन्यतमे दिवालग्ने स्थिते दिवागतमिति । एवं कालदिङ्मेषसिंहधनुषि पूर्वस्यां गतम् । वृषकन्यामकरैर्दक्षिणस्यां । मिथुनतुलाकुम्भैः पश्चिमायां । कर्कवृश्चिकमीनैरुत्तरस्यां दिशि गतमिति । अथ मेषलग्ने पृच्छाकाले स्थिते मेषे चरे भूमौ, वृषे गोकुलादौ, मिथुने गीतनृत्यस्थाने संग्रामभूमौ वा, कर्कटके जलसमीपे, सिंहे अरण्यभूमौ, कन्यायां नौसमीपे, तुलायामापणगृहे, वृश्चिके बिले श्वभ्रे, धनुषि संग्रामे च प्रकारभूमौ, मकरे जलसमीपे, कुम्भे शिल्पगृहे भाण्डोपस्करसमीपे, मीने जलसमीप इति । स्वचराश्च सर्वे इति बृहज्जातके प्रोक्तम् । वयो जातिश्च लग्नपादिति । लग्नपात् लग्नेशात् चौरस्य वयःप्रमाणं जातिं च वदेत् । तथा च संहितायाम्—"वयांसि तेषां स्तनपानबाल्यव्रतस्थिता यौवनमध्यवृद्धाः । अतीववृद्धा रविचन्द्रभौमज्ञशुक्रवागीशशनैश्चराणा"मिति । एवं चन्द्रे लग्नपत्तौ शिशुः भौमे तु चतुर्थवर्षाधिकः, बुधे ब्रह्मचारी द्वादशाब्दः, शुक्रे यौवनोपेतः द्वात्रिंशदब्दः, गुरौ मध्यवयः खपञ्चाब्दः, सूर्ये सप्तत्यब्दः वृद्धः, सौरेऽतीववृद्धः अशीत्यब्दः । जातिः ब्राह्मणादिः "जीवसितौ विप्राणां क्षत्रस्यारोष्णगू विशां चन्द्रः । शूद्राधिपः शशिसुतः शनैश्चरः शङ्करभवानां"-मिति ॥ १३ ॥

भाषा—प्रश्नलग्नके नवमांशसे नष्ट वस्तुका निर्णय जैसे-धातु, जीव, मूल आदि होता है, तथा, उसका वर्ण राशिवर्णके अनुसार ही समझना चाहिये, तथा नवांश राशिके अनुसार दीर्घ ह्रस्व-मध्य आदिका ज्ञान और नवांशपतिके बलाबलके क्रमसे वस्तुके सारासार तत्वका ज्ञान करना चाहिये । चौरका वर्ण ज्ञानके लिये द्रेष्कासे विचार करना चाहिये, समय ज्ञानके लिये दिवाबली रात्रि बली संन्ध्यावली राशिके अनुसार समझना चाहिये । दिशा ज्ञानके लिये मेषादिक राशियां जिस प्रकार पूर्वादि दिशामें बली हैं तदनुसार पूर्वादिक दिशाका ज्ञान करना चाहिये । नष्ट वस्तुके स्थान जाननेके लिये जलचर वनचर ऊषर इत्यादि राशिके क्रमानुसार समझना चाहिये । लग्नेशकी जाति और अवस्थानुसार अवस्था और जाति समझनी चाहिये इत्यादि ॥ १३ ॥

विशेषः—धातु, मूल, जीव, चिन्ता निर्णयके लिये द्वितीय अध्यायके सप्तम श्लोकानुसार नवांश विषम तथा सम राशिके होनेसे निर्णय करना । वर्णके लिये जैसे "रक्तः श्वेतः शुकतनुनिभः" इत्यादिके क्रमानुसार, बलाबलके लिये जैसे अन्तः सारान् जनयति रविर्दुर्भगान् सूर्यसूनुः" इत्यादिसे, चौरके वर्णज्ञानके लिये राशिवर्णानुसार तथा ग्रहबलीके क्रमसे जैसे 'विप्राधीशौ भार्गवेज्यौ कुजार्कौ' इत्यादि से जाति निर्णय करना और "मेषे च सिंहे धनु पूर्वभागे" इत्यादिसे दिशाका ज्ञान करना चाहिये । इत्यादि ॥ १३ ॥

इति वराहमिहिरात्मज-दैवज्ञ-पृथुयशो-विरचितायां षट्पञ्चाशिकायां मिथिला—
देशान्तर्गत-बरौनी-ग्रामवास्तव्य-ज्यौतिष-धर्म्मशास्त्राचार्य-ज्यौतिषतीर्थ-
काव्यरत्न-मैथिल-झोपाख्य-श्रीदीनानाथशास्त्रि-कृतभाषाटीकायां
मिश्रिकाध्यायः सप्तमः समाप्तः ।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।

मुद्रकः—विद्याविलास प्रेस, बनारस सिटी । २.......

वनमाला

सान्वय-'अमृतधारा' हिन्दी टीका सहित ।

पं० जीवनाथ झा विरचित फलित ग्रन्थों में यह सर्व श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में प्रश्न के आधार पर, ग्रहों की स्थिति पर, वायुकी परिस्थिति पर तथा प्राकृतिक अनेक लक्षणों से वृष्टि का विचार एवं फसल का परिणाम तथा धान्य के व्यापार आदि विषयों का भी विचार सुचारु रूप से किया हुआ है। लघु होने पर भी सर्वोपयोगी होने से बड़े ही महत्व का यह ग्रन्थ है। ।)

धराचक्रम्

'सुबोधिनी' भाषा टीका सहितम् ।

यदि आप रत्नगर्भा भगवती वसुन्धरा के अन्तःप्रदेश के महारत्नों की गवेषणा करने के इच्छुक हों तो महर्षिलोमश प्रणीत इस "धराचक्र" नामक ग्रन्थ को एक बार अवश्य ही देखिये। इसकी सरल 'सुबोधिनी' भाषा टीका को पढ़ने से आपको स्वयं ही इस बात का ज्ञान हो जायगा कि अमुक अमुक जगह पृथिवी के नीचे रत्न, महारत्न आदि हैं। ≡)

लोमशसंहितोक्त-भृगुसंहितोक्त—

भावफलाध्यायः

'सुबोधिनी'—'विमला' भाषाटीका सहितः ।

वर्तमान युगमें महर्षि लोमश प्रणीत 'लोमशसंहिता' तथा महर्षि भृगु प्रणीत 'भृगुसंहिता' का कितना यथाथ फल घटता है; यह बात सब विदित है। इन्हीं उपर्युक्त दोनों महान् ग्रन्थों के सार भूत प्रस्तुत "भावफलाध्याय" नामक ग्रन्थ है। आज तक प्रायः इसका विशुद्ध संस्करण अप्राप्य ही था, जन साधारण की सुभीता के लिये महर्षि लोमश प्रणीत 'भावफलाध्याय' तथा महर्षि भृगु प्रणीत भावफलाध्याय' नामक दोनों ग्रन्थ एक ही जिल्द में प्रकाशित कर दिये गये हैं। ।)

बृहत्-होडाचक्रविवरणम् ।

सम्पादक—ज्यौतिषाचार्य-पण्डित श्री मुरलीधरठक्कुरः ।

इसमें लोकोपयुक्त मौहूर्तिकसंग्रह को एकत्र करके उन सब श्लोकों की हिन्दी टीका भी छाप दी है। व्यवहारमें तथा परीक्षा में जितने भी विषय आ सक्ते हैं, कोई भी विषय छूटने नहीं पाये हैं। शतपथचक्र, नक्षत्रचक्र, राशिचक्र, वरवधू-मेलापक चक्र, घातचक्र, लग्न बनाने की विधि आदि १० चक्र भी दिये गये हैं। ।≡)

ताजिकनीलकण्ठी

जलदगर्जना-उदाहरणचन्द्रिका संस्कृतहिन्दीटीकया, गूढग्रन्थिविमोचिनी-वासनया च सहिता ।

उपर्युक्त सभी टीकाओं में अपने २ नाम के अनुकूल ग्रन्थ के परीक्षोपयोगी समस्त विषयों और कठिन स्थलों को इतनी सरलता से सिद्ध किया है कि प्रत्येक सुकोमलमति बालक भी थोड़ा सा अनुगम करके अपने आप भी उन विषयों का ज्ञान और अभ्यास कर सकता है । ४)

जन्मपत्रदीपकः ।

सोदाहरण सटिप्पण-हिन्दीटीकासहितः ।

इस छोटी सी पुस्तक में जन्मपत्र बनानेकी कुछ विधियां ऐसी सरलता पूर्वक नये ढङ्ग से लिखी गई हैं कि साधारण पढ़ा लिखा व्यक्ति भी इसका आद्योपान्त मनन करके अच्छी से अच्छी कुण्डली (जन्मपत्रिका) बना सकता है । सर्व साधारण को गूढ़ विषयों का सुलभता पूर्वक झटिति परिज्ञान होजाने के लिये अत्यन्त सरल सुबोध हिन्दीभाषा में टीका और उदाहरण एवं जगह२ पर आवश्यक टिप्पणी भी कर दी गई है । अभिनव परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण १।)

बीजगणितम्

दैवज्ञ पण्डित श्रीजीवनाथझाविरचित-उदाहरणोपपत्तिसमन्वित 'सुबोधिनी' संस्कृतटीका सहित-संस्कृताभिनवीनोपपत्ति सविशेष भाषोदाहरण-संवलित 'विमला' टीकाद्वयसहितम् ।

जीवनाथी टीका की प्रशंसा भारत के सभी प्रकाण्ड विद्वानोंने मुक्त कण्ठसे कर रहे हैं । इसके विषयमें प्रस्तुत संस्करण की विशेषता यह है कि जीवनाथी टीकामें जो प्राचीनता थी याने फ्लैकशन वगैरह; जोकि आधुनिक समयमें दिया जाता है । विशद रूपसे परिष्कृत कर दिया गया है तथा मूलके साथ २ जीवनाथी टीका की विस्तृत भाषा टीका, नवीन उदाहरण और नवीन उपपत्ति भी दी गयी है । संस्कृत संसारमें उथल-पुथल मचाने वाला यह संस्करण प्रथम वार ही प्रकाशित हो रहा है । शीघ्र प्राप्त होगा

ग्रहलाघवम्

विश्वनाथकृत व्याख्योदाहरणयुत-नूतनोदाहरणोपपत्ति संवलित माधुरी नामक संस्कृत हिन्दीटीका द्वयोपेतम् ।

आज तक इस ग्रन्थ की कोई भी ऐसी सरल टीका नहीं थी जिससे विद्यार्थी सुलभता पूर्वक ग्रन्थ का आशय समझ कर परीक्षामें पूरी सफलता प्राप्त करसकें। विश्वनाथी टीका के साथ इसकी माधुरी नामक परीक्षोपयुक्त संस्कृत हिन्दी टीकामें ग्रन्थाशय को अत्यन्त सरल शब्दों में समझाया गया है एवं विश्वनाथी उदाहरण के अतिरिक्त नवीन उदाहरण तथा उपपत्ति भी यथा स्थान दे दी गई है जिससे इस संस्करण का महत्व और भी बढ़ गया है। ३॥)

सूर्यसिद्धान्तः

तत्त्वामृतभाष्योपपत्ति-टिप्पणीभिः सहितः ।

पूर्व प्रकाशित सभी टीकाओं के गुण दोषों की समालोचना करके प्रस्तुत संस्करण प्रकाशित किया गया है। बड़े बड़े विद्वानोंने उपर्युक्त तत्त्वामृतभाष्य को निरीक्षण करके मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा की है ! सूर्यसिद्धान्त का ऐसा प्रशंसनीय संस्करण यह प्रथम बार ही प्रकाशित हुआ है ३॥)

वास्तुरत्नावली

सोदाहरण-'सुबोधिनी' संस्कृत-हिन्दी टीका परिशिष्ट सहित ।

आज तक इस ग्रन्थ की कोई भी ऐसी सरल टीका नहीं थी जिससे परीक्षार्थी विद्यार्थी सुलभता पूर्वक इस ग्रन्थ का आशय समझ सकें। अतः इस अभिनव संस्करण में अवतरणों के साथ २ प्रत्येक श्लोकों की परीक्षोपयोगी उदाहरण सहित संस्कृत हिन्दी टीका, नाना चक्र और अन्तमें बृहत्परिशिष्ट दिये गये हैं। २)

जामानिसूत्रम्

सोदाहरण-'विमला' संस्कृत-हिन्दी टीका द्वयोपेतम् ।

अन्य प्रकाशित संस्करणों में जो कुछ अधूरापन और त्रुटियां थीं उन सभी परीक्षोपयोगी विषयों का समावेश प्रस्तुत संस्करण में कर दिया गया है १॥)

जातकपारिजातः-(सचित्रः)

'सुधाशालिनी' 'विमला' संस्कृत-हिन्दी टीकाद्वयोपेतः

परीक्षोपयोगी सरल संस्कृत-हिन्दी टीका, उपपत्ति तथा पदार्थनिर्देशक नाना चित्र-चक्र आदि विविध विषयों से विभूषित सर्व गुणोपेत यह अभिनव सर्वोत्तम बृहत् संस्करण प्रथम बार ही प्रकाशित होकर संस्कृत संसार में उथल-पुथल मचा रहा है। ६)

मास्टरमणिमालाया एकादशो मणिः (ज्यौतिषविभागे चतुर्थः ४)

* श्रीः *

नरपतिजयचर्योक्त—

अहिबलचक्रम् ।

भाषाटीकासहितम्



टीकाकारः—

पं० श्रीसीताराम झा, ज्यौ० आ०

प्रकाशकः—

मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स

मूल्यम् ≈)

मास्टरमणिमालाया एकादशो मणिः (ज्यौतिषविभागे चतुर्थः ४)

नरपतिजयचर्योक्त—

अहिबलचक्रम् ।

मिथिलादेशस्थचौगमानिवासिकाशीस्थ-
संन्यासिसंस्कृतपाठशालाध्यापक-
ज्यौतिषाचार्यतीर्थ—

पं० श्रीसीतारामशर्मकृत—

सुबोधिनी—टीकासहितम् ।

तेनैव संशोधितम् ।

तदिदं
"काशीस्थ-संस्कृत-बुक्डिपो" ऽधिपतिभिः
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स् महानुभावैः
प्रकाशितम् ।

तृतीयावृत्तिः] सम्वत् १९९६ [मूल्यम् =)

प्रकाशक—
जे० एन० यादव प्रोप्राइटर
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स
संस्कृत बुकडिपो,
कचौड़ीगली, बनारस सिटी।

शाखा—
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स
संस्कृत बुकडिपो,
मुरादपुर, बाँकीपुर,
पटना।

सम्वत् १९९६

मुद्रक—
श्रीमन्नालाल 'अभिमन्यु' एम० ए०,
मास्टर प्रिंटिङ्ग वर्क्स,
बुलानाला, काशी।

भूमिका

अदृष्टं भूस्थितं द्रव्यं शल्यं तोयं च दैवतम् ।
ज्ञायते येन तच्छास्त्रं ज्यौतिषं कैर्न वन्द्यते ॥

जिस शास्त्र के द्वारा भूमि के नीचे गड़े हुए द्रव्य, शल्य आदि का ज्ञान होता है ऐसा ज्यौतिष शास्त्र किससे वन्दनीय नहीं है ? किन्तु कराल कलिकाल के प्रभाव से दिव्यदृष्टिप्राचीन महर्षियों के बनाए हुए ग्रन्थ लुप्तप्राय हो रहे हैं । जो कुछ उपलब्ध भी हैं उनके गूढ़ अभिप्रायों को हम लोग समझते हो नहीं । समझें कैसे ? ऐसे आलसी हो गये हैं कि उनकी खोज भी नहीं करते हैं, अगर थोड़ा भी श्रम उठावें तो अब भी नरपतिजयचर्या, लोमशसंहिता आदि अनेकों ऐसे ग्रन्थ हैं जिनके द्वारा ग्रहण आदि दृश्य गणित के समान–अदृश्यफलगणना में भी सत्यता प्रत्यक्ष हो सकती है ।

इस समय भूमिस्थित द्रव्य, शल्य आदि जानने के लिए नरपतिचर्योक्त "अहिबलचक्र" तथा अश्रुत और अदृष्ट वस्तु का पता लगाने में लोमशसंहितोक्त "धराचक्र" ये दोनों अत्यन्त प्रामाणिक हैं । इनमें भी अपने कुल के स्थापित द्रव्य का 'अहिबल चक्र' से और अदृष्ट अश्रुत द्रव्य का 'धराचक्र' से निश्चय करने का आदेश है । लोमशसंहिता में कहा है—

"चक्रेणाहिबलाख्येन स्वकुलैः स्थापितं धनम् ।
अदृष्टं चाश्रुतं वित्तं धराचक्रेण साधयेत् । स्पष्टार्थ

इन दोनों में 'अहिबलचक्र' तो नरपतिजयचर्या में मुद्रित उपलब्ध है। नरपतिजयचर्या से पृथक् भी भाषाटीका सहित मुद्रित हो चुका है। किन्तु उसमें कितने ही स्थानों में त्रुटियों को देखकर सविशेष-सान्वय-सोदाहरण तथा उपपत्ति (युक्ति) सहित, भाषाटीका करके बा० बैजनाथप्रसाद यादव (मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स संस्कृत बुकडिपो के अध्यक्ष) को प्रकाशित करने के लिये मैंने समर्पण किया। यदि इससे सुजनसमाज का कुछ भी उपकार होगा तो मेरा भी यत्न सफल होगा।

'धराचक्र' सम्भवतः आज तक मुद्रित नहीं हुआ था। बहुत अन्वेषण करने पर मुझे लेख-पुस्तक से उपलब्ध हुआ। उसे भी मैंने टीका सहित मुद्रित कराकर आप महानुभावों की सेवा में प्रस्तुत कर दिया है। आप महानुभावों से विशेष प्रार्थना यही है कि इसमें मनुष्यधर्मवश जो कुछ त्रुटि हुई हो उन्हें क्षमा कर मुझे अनुगृहीत करें।

❀ इति शम् ❀

भवदीयकृपाभिलाषी—

श्रीसीतारामझा, चौगमा।

(सम्प्रति काशी)

सादरं समर्पणम्—

मास्टरमणिमालाया एकादशसंख्यको मणिर्जातः।
ज्यौतिषशास्त्रविभागे चतुर्थ एवेति नतशिरसा॥
श्रीविश्वेशपदेभ्यः सादरमादौ समर्प्यते भक्त्या।
तद्दर्शनगुण-कीर्तन-जातसुखेन प्रकाशकेन मया॥

* श्रीगणेशाय नमः *

अहिबलचक्रम् ।



टीकाकारकृतमङ्गलाचरणम्—

यत्पादपङ्कजकृपालवमेव लब्ध्वा
मूढोऽपि गूढविषयानिह वक्तुमीशः ।
नत्वा गिरं गणपतिं गगनेचरांस्तान्
विशद्वृतेऽहिबलये वितनोमि टीकाम् ॥

अथ वस्तुनिर्देशात्मकं मङ्गलाचरणम्—

अहिचक्रं प्रवक्ष्यामि यथा सर्वज्ञभाषितम् ।
द्रव्यं शल्यं तथा शून्यं येन जानन्ति साधकाः ॥१॥

अन्वयः—साधकाः येन चक्रेण, (भूमौ) द्रव्यं सुवर्णादिकं, शल्यं = अस्थ्यादिकं, तथा शून्यं जानन्ति (तत्) यथा सर्वज्ञभाषितं अहिचक्रं (अहं) प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥

अर्थ—साधकगण जिस चक्र से भूमि में गड़ा हुआ द्रव्य (सुवर्ण रजत आदि) शल्य (हड्डी आदि) तथा शून्य (द्रव्य शल्य रहित स्थान) समझते हैं, उस सर्वज्ञ (महादेवजी आदि) का कहा हुआ अहिचक्र को मैं (नरपतिनामक ग्रन्थकार) कहता हूँ ॥ १ ॥

अथ परिभाषा—

वितस्तिद्वितयं हस्तो राजहस्तश्च तद्द्वयम् ।
दशहस्तैश्च दण्डः स्यात् त्रिंशद्दण्डैर्निवर्तनम् ॥२॥

अन्वयः—वितस्तिद्वितयं हस्तः, तद्द्वयं = हस्तद्वयं राजहस्तः, दशहस्तैः दण्डः स्यात्, त्रिंशद्दण्डैर्निवर्तनं भवति ॥ २ ॥

अर्थ—दो वित्ते का एक हाथ, और दो हाथ का एक राजहस्त (गज) होता है और दश राजहस्त का एक दण्ड होता है। उस दण्ड से ३० दण्ड का एक निवर्तन होता है, अर्थात् ३० दण्ड लम्बा और चौड़ा जमीन एक 'निवर्तन' कहलाता है ॥ २ ॥

अथ चक्रस्थापनप्रकारः—

निधिर्निवर्तनैकस्थः सम्भ्रान्तो यत्र भूतले ।
तत्र चक्रमिदं स्थाप्यं स्थानद्वारमुखस्थितम् ॥३॥

अन्वय—यत्र भूतले निवर्तनैकस्थः निधिः (द्रव्यं) सम्भ्रान्तः, तत्र स्थानद्वारमुखस्थितं इदं = वक्ष्यमाणं चक्रं स्थाप्यम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस जमीन में एक निवर्तन के भीतर निधि (गाड़ा हुआ धन) सम्भ्रान्त (भूल) हो गया हो उस स्थान के द्वार पर अहिचक्र के मुख रखकर स्थापन करै ॥ ३ ॥

अथ स्थानद्वारज्ञानम्—

गृहे चेत्तद्गृहद्वारे, बहिश्चेदहिमस्तके ।
अथवेन्दुभदिश्येव यदि वा निधिपो यतः ॥
प्रविशेत् तत्र विज्ञेयं स्थानद्वारं त्रिधा बुधैः ।
भाद्रात्त्रिभिस्त्रिभिर्मासैः क्रमात् प्राच्या अहेः शिरः ॥

अहिचक्रमिदं तत्र स्थाप्यं विद्वद्वरैर्यथा ।
द्वारे नागशिरस्तत्र कृत्तिकादीन विन्यसेत् ॥

अर्थः—यदि किसी घरमें भूला हुआ द्रव्य हो तो उस घर के द्वार को ही स्थान का द्वार समझना । यदि बाहर में हो तो जिस दिशा में शेषनाग का शिर हो उसी दिशा में स्थान का द्वार समझना । अथवा कृत्तिकादि सात सात नक्षत्र पूर्वादि दिशाओं में है उस हिसाब से जिस दिशा में चन्द्र नक्षत्र हो उस दिशा में स्थान का द्वार समझना । अथवा द्रव्य का मालिक जिस दिशा से उस स्थान में प्रवेश करै उसी दिशा में स्थान के द्वार समझना । इस प्रकार बाहर में द्रव्य ज्ञान करने में तीन प्रकार से स्थान-द्वार कहा गया है । भाद्र आदि तीन तीन मासों में पूर्वादि दिशाओं में क्रम से शेषनाग का शिर रहता है, अर्थात् भाद्र से तीन मासों में पूर्वमें, अगहन से ३ मासों में दक्षिण, फाल्गुन से ३ मासों में पश्चिम. और ज्येष्ठ से ३ मासों में उत्तर दिशा में । इस प्रकार घर से बाहर में स्थान द्वार का निश्चय कर अहि-चक्र को इस प्रकार स्थापन करै जिससे नाग का मस्तक स्थान द्वार पर पड़ै वहां से कृत्तिकादिक नक्षत्र का न्यास करना चाहिये ॥

तत्र निर्णयः—

प्रकारत्रितयादेव निधिं संसाधयेद् बुधः ।
संवादे द्रव्यलाभः स्याद् विसंवादे न किञ्चन ॥

अर्थः—उपरोक्त तीनों प्रकार से निधि का ज्ञान करै, यदि तीनों प्रकार से वा दो प्रकार से एक वाक्यता हो तो निश्चय द्रव्य लाभ होता है । तीनों में एक वाक्यता न हो तो द्रव्यलाभ नहीं होता है वहाँ १२ श्लोक से चक्र स्थापन करना !

अथ चक्रनिर्माणप्रकारः—

ऊर्ध्वरेखाष्टकं लेख्यं तिर्यक् पञ्च तथैव च ।
अहिचक्रं भवत्येवमष्टाविंशतिकोष्ठकम् ॥४॥

अन्वयः—ऊर्ध्वरेखाष्टकं लेख्यम्, तथैव च पञ्च तिर्यक्रेखाः लेख्याः, एवं अष्टाविंशतिकोष्ठकं अहिचक्रं भवति ॥ ४ ॥

अर्थः—आठ खड़ी रेखा और पाँच पड़ी रेखा लिखने से (२८) अट्ठाइस कोष्ट का अहिचक्र होता है ॥ ४ ॥

यथा—



अथ चक्रे नक्षत्रस्थापनप्रकारः—

तत्र पौष्णाश्वियाम्यर्क्षं कृत्तिकापितृभाग्यकम् ।
उत्तराफाल्गुनी लेख्यं पूर्वपंक्त्यां भसप्तकम् ॥५॥

अन्वयः—तत्र (चक्रे) पूर्वपङ्क्त्यां पौष्णाश्वियाम्यर्क्षं, कृत्तिका-पितृभाग्यकम्, उत्तराफाल्गुनी इति भसप्तकं लेख्यम् ॥ ५ ॥

अर्थः—उपरोक्त चक्र में ऊपर के पहिली पंक्ति के सात कोष्ठों में क्रम से रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी लिखै ॥ ५ ॥

अहिर्बुध्न्याजपादर्क्षं शतभं ब्राह्मसार्पभम् ।
पुष्यं, हस्तं, समालेख्यं*द्वितीयां पङ्क्तिमास्थितम् ॥६॥

अन्वयः—(पुनः) अहिर्बुध्न्याजपादर्क्षं, शतभं ब्राह्मसार्पभं, पुष्यं, हस्तं, द्वितीयां पङ्क्तिं आस्थितं समालेख्यम् ॥ ६ ॥

अर्थ—फिर दूसरी पंक्ति के सातों कोष्ठ में क्रम से उत्तर-भाद्रपदा, पूर्वभाद्रपदा, शतभिषा, रोहिणी, श्लेषा, पुष्य और हस्त लिखे ॥ ६ ॥

विधिर्विष्णुर्धनिष्ठाख्यं सौम्यं रौद्रं पुनर्वसुः ।
चित्राख्यं च तृतीयायां पङ्क्तौ धिष्ण्यस्य†सप्तकम् ॥७॥

अन्वयः—(पुनः) तृतीयायां पंक्तौ विधिः, विष्णुः, धनिष्ठाख्यं सौम्यं, रौद्रं, पुनर्वसुः, चित्राख्यं, 'इति' धिष्ण्यस्य सप्तकं लेख्यम् ॥ ७ ॥

अर्थः—फिर तीसरी पंक्ति के सातों कोष्ठक में क्रम से अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, चित्रा ये नक्षत्र लिखे ॥ ७ ॥

*'लिखेत्प्राज्ञो' इति पाठः साधुः । † "नक्षत्रसप्तकम्" इति पाठः ।

विश्वर्क्षं तोयभं मूलं ज्येष्ठां मैत्र-विशाखके ।
स्वातिं पङ्क्तौ चतुर्थ्यां च कृत्वा चक्रं विलोकयेत् ॥८॥

अन्वयः—(पुनः) चतुर्थ्यां पंक्तौ विश्वर्क्षं, तोयभं, मूलं, ज्येष्ठां, मैत्रविशाखके, स्वातिं च कृत्वा चक्रं विलोकयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—फिर चौथी पंक्ति के सातों कोष्ठक में क्रम से उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, मूल, ज्येष्ठा, अनुराधा, विशाखा, स्वाती लिखकर चक्र को देखै ॥ ८ ॥

एवं प्रजायते चक्रे प्रस्तारः पन्नगाकृतिः ।
द्वारशाखे मघायाम्ये द्वारस्था कृत्तिका मता॥९॥

अन्वयः—एवं चक्रे पन्नगाकृतिः प्रस्तारः प्रजायते । तत्र द्वारशाखे मघायाम्ये 'तथा' द्वारस्था कृत्तिका मता ॥ ९ ॥

अर्थः—इस प्रकार चक्र में सर्पाकृति प्रस्तार होता है। उसमें द्वार की दोनों शाखाओं में मघा और भरणी, और द्वार में कृत्तिका होती है। पीछे चक्र देखो ॥ ९ ॥

अथ चन्द्रसूर्ययोर्नक्षत्राणि—

अश्वीशपूर्वाषाढ़ादि-त्रिकं पञ्च-चतुष्टयम् ।
रेवती पूर्वभाद्रेन्दोर्भानि*शेषाणि भास्वतः ॥१०॥

अन्वयः—अश्वीशपूर्वाषाढादित्रिकं पञ्च चतुष्टयम्, रेवती, पूर्वभाद्रा 'इति' इन्दोः भानि, शेषाणि भास्वतः = सूर्यस्य भानि भवन्ति ॥ १०॥

---

*पूर्वभाद्रपदा पौष्णमिन्दोः शेषाणि भास्वतः । इतिपाठः साधुः ।

अर्थ—अश्विनी. से तीन (अ. भ. कृ.) आर्द्रा से पांच (आ. पु. पु. श्ले. म.) और पूर्वाषाढ़ से चार (पू. षा, उ. षा, अभि, श्रवण) तथा रेवती और पूर्वभाद्रपदा ये १४ चन्द्रमा के नक्षत्र हैं और शेष १४ (रो. मृ. पू. फा. उ. फा, ह चि. स्वा, वि. अनु. ज्ये, मूल, ध. श. उत्तरभाद्रपदा) नक्षत्र सूर्य के हैं ॥ ११ ॥

अथ तात्कालिकचन्द्रसाधनम्—

उदयादिगता नाड्यो भघ्नाः षष्ट्याप्तशेषके।
दिनेन्दुभुक्तयुक्ते स भवेत् तत्कालचन्द्रमाः ॥११॥

अन्वयः—(प्रश्नकालिकनक्षत्रस्य) उदयादिगताः नाड्यः भघ्नाः = सप्तविंशतिगुणिताः (ततः) षष्ट्याप्तशेषके दिनेन्दुभुक्तयुक्ते कार्ये, स तत्कालचन्द्रमाः भवेत् ॥ ११ ॥

अर्थ—प्रश्नकालमें वर्तमान नक्षत्र के उदय (अर्थात् आरम्भ काल) से जितनी घटी गत हो गई हो अर्थात् इष्ट काल में जितनी भयातघटी हो, उसको २७ से गुना करके ६० साठ अर्थात् भभोग घटी से भाग देना लब्धि और शेष जो हो उसमें अश्विनी आदि गत चन्द्र नक्षत्र की संख्या जोड़ने से तात्कालिक चन्द्रमा होते हैं अर्थात् स्पष्टचन्द्रनक्षत्र होता है ॥ ११ ॥

उदाहरणम्—

आदौ भयातभभोगपरिभाषा मदीया—

नक्षत्रारम्भतः स्वेष्ट-कालं यावद् गतं भवेत्।
घट्यादिकं भयातं तद्, भस्य भोगो भभोगकः ॥

अर्थ—वर्तमान नक्षत्र के आरम्भ समय से इष्ट काल पर्यन्त

जितनी घटी और पल गत हुआ हो वह 'भयात' कहलाता है। और वर्तमान नक्षत्र का सम्पूर्ण (आरम्भ से अन्त तक) भोग काल घट्यादिक भभोग कहलाता है।

अथ भयातभभोगसाधनप्रकारो मदीयः—

षष्ट्या गतर्क्षघट्याद्यं शोध्यं स्वेष्टघटीयुतम्।
भयातं स्यात् तथा स्वर्क्षघटीयुक्तं भभोगकः॥

अर्थ—पञ्चाङ्ग में गत नक्षत्र की घटी और पल जो लिखा हो उसे ६० में घटा कर शेष में इष्ट घटी पल जोड़ देने से भयात होता है। और उसी शेष में वर्तमान नक्षत्र की पञ्चाङ्गस्थ घटी और पलको जोड़ देने से भभोग होता है।

विशेष—

पञ्चाङ्गर्क्षघटीमानादिष्टकालोऽधिकस्तदा ।
तदन्तरं भयातं स्याद् भभोगः पूर्ववत् सदा॥

अर्थ—पञ्चाङ्ग में नक्षत्र का मान जो घटी, पल लिखा रहता है उससे इष्टकाल अधिक हो (अर्थात् अग्रिम नक्षत्र में इष्टकाल हो) तो उन दोनों का अन्तर (अर्थात् इष्टकाल में नक्षत्र मान घटी, पल को घटा कर शेष) भयात होता है। भभोग पूर्ववत् साधन करें। अथवा अपनी बुद्धि से पूर्व श्लोक के अनुसार भयात भभोग साधन कर लेना चाहिये।

यथा—

संवत् १९८५ चैत्र शुक्ल ५ पञ्चमी सोमवार में सूर्योदय से पन्द्रह दण्ड बीस पल (१५। २०) इष्टकाल में प्रश्न किया तो

पञ्चाङ्ग के तिथि नक्षत्र--

तिथि	वार	घ. प.	नक्षत्र	घ. प.
४	रवि	२८।५७	भ.	१५।२६
५	चं.	२२।५७	कृ.	११।२५
६	मं.	१७।२३	रो.	६।३५

यहाँ ५ सोमवार में कृत्तिका नक्षत्र के मान (११ । २५) से इष्टकाल (१५ । २०) अधिक है इसलिये इष्टकाल में नक्षत्रमान को घटाया तो शेष ३ । ५५ रोहिणी के आरम्भ से इष्टकाल तक गत घटी हुई यही ३ । ५५ भयात हुआ ।

तथा इष्टकाल में रोहिणी वर्तमान होने के कारण गतर्क्ष कृत्तिका हुई, उसका मान पञ्चाङ्ग में ११ । २५ है इसको ६० में घटाया तो शेष ४८ । ३५ रहा, इसमें रोहिणी का पञ्चाङ्गस्थ घटी ६ । ३५ जोड़ दिया तो ५५ । १० भभोग हुआ ।

अथ चन्द्रसाधनोदाहरणम् —

"उदयादिगता नाड्यः" इत्यादि श्लोक के अनुसार भयात ३ । ५५ को एक जातीय करके २३५ हुआ, इसको २७ से गुना किया तो ६३४५ हुआ, इसमें भभोग (५५ । १०) के एकजाती ३३१० से भाग दिया प्रथमलब्धि १ । शेष ३०३५ को ६० गुना कर १८२१०० इसमें भभोग ३३१० से भाग दिया तो दूसरी लब्धि ५५ फिर शेष ५० को ६० से गुना कर ३००० इसमें उसी ३३१० से भाग दिया तो तीसरी लब्धि ० वर्तमान नक्षत्र के पल हुए ।

भागक्रियादर्शनम् ।

भाजक) भाज्य (लब्धि
३३१०) ६३४५ (१=नक्षत्र
३३१०

नक्षत्रशेष = ३०३५
×६०

३३१०) १८२१०० (५५ = घटी
१६५५०

१६६००
१६५५०

घटी शेष = ५०
×६०

३३१०) ३००० (० = पल

इस प्रकार नक्षत्रादि लब्धि = १ । ५५ । ० में अश्विनी से इष्टकाल में गत नक्षत्र कृत्तिका तक की संख्या ३ जोड़ दिया तो ४ । ५५ । ० यह स्पष्ट चन्द्र का नक्षत्र हुआ, अर्थात् ४ रोहिणी गत, वर्तमान मृगशिरा के दण्ड पल (५५ । ०) पर चन्द्रमा हैं । इसी प्रकार सर्वत्र भयात भभोग पर से चन्द्रमा का नक्षत्र समझना । इस प्रकार यहाँ १० वाँ श्लोक के अनुसार सूर्य के नक्षत्र में चन्द्रमा हुआ ।

इसकी उपपत्ति (युक्ति)—

यह है—कि जितने काल में चन्द्रमा एक नक्षत्र का भोग करते हैं, उतने ही काल में उसी नक्षत्र से आरम्भ कर २७ सता:

इस नक्षत्रों का भोग (अन्तर) बीतता है इस लिये त्रैराशिक से अनुपात हुआ कि—यदि भभोग घटी में २७ नक्षत्र तो भयात घटी में क्या = $\frac{२७ \times \text{भयात}}{\text{भभोग}}$ लब्धि-गत नक्षत्र, शेष वर्तमान नक्षत्र की घटी और पल होता है, अश्विन्यादि से नक्षत्र की संख्या जानने के लिये गत चन्द्रनक्षत्र जोड़ा जाता है। यहाँ आचार्य ने भभोग के स्थान में स्वल्पान्तर से ६० ग्रहण किया ॥ ११ ॥

अथ स्थानद्वारज्ञानम्—

षष्टिघ्नं तं निशानाथं शरवेदाप्तकं पुनः ।
त्रिभिर्भक्त्वा युगैः शेषं प्रागादि-चक्रवक्त्रगम् ॥१२॥

अन्वयः—तं निशानाथं = चन्द्रं, षष्टिघ्नं, शरवेदाप्तकम्, पुनः त्रिभिः भक्त्वा, युगैः शेषं प्रागादि-चक्रवक्त्रगं (ज्ञेयम्) ॥ १२ ॥

अर्थः—"उदयादिगना नाड्यः" इत्यादि प्रकार से साधित स्पष्ट नक्षत्रात्मक चन्द्र को ६० साठ से गुना करके उसमें ४५ से भाग देकर फिर तीन का भाग देने से सशेष लब्धि को चार से तष्टित करने से शेष पूर्वादि-दिशास्थित-चक्रके मुख (द्वार) समझना चाहिये। अर्थात् १ में पूर्व, २ में दक्षिण, ३ में पश्चिम, ४ में उत्तर स्थान के द्वार होता है* ॥ १२ ॥

---

* षष्टिघ्नं तं निशानाथं शरविश्वाप्तशेषकम् ।
युगैर्भक्त्वा भवेच्छेषं प्रागादि-चक्रवक्त्रगम् ॥ इति पाठान्तरम् ॥
अन्वयः—तं निशानाथं षष्टिघ्नं शरविश्वाप्तशेषकम्,
युगैः = ४ चतुर्भिः भक्त्वा शेषं प्रागादिचक्रवक्त्रगं भवेत् ।
अर्थ—उपरोक्त चन्द्र को ६० से गुनाकर, १३५ का भाग देने से शेष सहित जो लब्धि हो उसको ४ से तष्टित करने पर एकादि शेष से पूर्वादि-दिशाओं में चक्र मुख (स्थान का द्वार) होता है ॥

इसकी उपपत्ति युक्ति—

$$\text{पूर्वोक्तनक्षत्रात्मक चन्द्रमा} = \text{गन} + \frac{२७ \times \text{भया}}{६०}$$

$$= \frac{६० \text{ गन} + २७ \times \text{भया}}{६०} \text{ अनुपात से}$$

$$\text{राश्यात्मक चन्द्रमा} = \frac{(६० \text{ गन} + २७ \text{ भया})\, १२}{६० \times २७}$$

$$= \frac{६० \text{ गन} + २७ \text{ भया}}{४५ \times ३} = \frac{६० \times \text{पूर्वोक्तचन्द्र}}{१३५}$$

मेषादिक राशियों में क्रम से पूर्वादिदिशाओं में चन्द्रमा रहते हैं इस लिये ४ से शेषित कर एकादिशेषों में पूर्वादिदिशा में चन्द्रमा रहते हैं, जिधर चन्द्रमा रहते हैं उधर स्थानका द्वार होना चाहिये। और उधर ही चक्र का मुख स्थापन करैं। यह मुख्य पक्ष है।

उदाहरणम्—

पूर्वोक्त चन्द्रमा ४।५५।० इसको ६० से गुना किया तो २९५।० हुआ इसमें ४५ और ३ (अर्थात् ४५ × ३ = १३५) का भाग देना है इस लिये भाज्य २९५।० को ६० से गुना कर एक जातीय किया तो १७७०० हुआ, इसे ६० से गुना करने के कारण भाजक १३५ को भी ६० से गुना कर ८१०० हुआ इसका भाग दिया। भागक्रियादर्शन— [आगे पृष्ठ में देखो]

—•—

भाजक) भाज्य (लब्धि
८१००) १७७०० (२ रा
१६२००
राशि शेष= १५००
×३०
८१००) ४५००० (५ अंश
४०५००
अंश शेष= ४५००
×६०
८१००) २७०००० (३३ क
२४३००
२७०००
२४३००
कलाशेष= २७००
×६०
८१००) १६२००० (२० वि
१६२०००
शेष= ० ॥

इस प्रकार राश्यादि चन्द्रमा २।५।३३।२० यह चार ४ से अल्प है। इसलिये चार से तष्टित करने की आवश्यकता नहीं हुई, जहाँ राशि के स्थान में चार से अधिक हो वहाँ ४ से तष्टित कर पूर्वादि दिशा समझना। इस प्रकार यहाँ शेष तीसरी राशि में चन्द्रमा है इसलिये चक्र का मुख पश्चिम द्वार में हुआ ॥ १२ ॥

बहुत पुस्तकों में—

"षष्टिघ्नं तं निशानाथं शरवेदाप्तकं पुनः।
युगैः शेषं भवेद्यत्तत् प्रागादिचक्रवक्त्रगम् ॥

इस प्रकार प्रामादिक पाठ है, जिससे कुछ भी अर्थ नहीं निकलता है ॥ इति ॥

अथ स्पष्टसूर्यसाधनम्—

चन्द्रवत् साधयेत् सूर्यमृक्षस्थं चेष्टकालिकम् ।
पश्चाद्विलोकयेत् तौ च स्वर्क्षे वा चान्यभे स्थितौ॥१३॥

अन्वयः—चन्द्रवत् इष्टकालिकं ऋक्षस्थं सूर्यञ्च साधयेत् । पश्चात् तौ = चन्द्रसूर्यौ स्वर्क्षे स्वस्वभे स्थितौ, वा अन्यभे स्थितौ, इति विलोकयेत् ॥ १३ ॥

अर्थः—जिस प्रकार चन्द्रनक्षत्र के भयात और भभोग पर से स्पष्ट चन्द्रमा का साधन ऊपर हुआ है उसी प्रकार इष्टकाल में नक्षत्रस्थित स्पष्टसूर्य का साधन करै, (अर्थात् जिस नक्षत्र में सूर्य हो उस नक्षत्र में सूर्य के प्रवेशकाल से इष्टकाल तक गत दिनादिक को सूर्य सम्बन्धी भयात मानना, और वर्तमान नक्षत्र के प्रवेश समय से अग्रिम नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश समय तक सूर्य सम्बन्धी भभोगकाल होता है । इस प्रकार सूर्य का भयात और भभोगकाल बनाकर सूर्यभयात काल को २७ से गुना करके उनमें सूर्यभभोग कालका भाग देना, लब्धि पूर्व प्रकार दिनादिक तीन स्थान लेना उसमें सूर्यभुक्त नक्षत्र की संख्या अश्विनी से गिन कर जोड़ने से स्पष्ट सूर्य का नक्षत्र होता है, वही तात्कालिक सूर्य

कहलाता है) पश्चात् सूर्य और चन्द्रमा को देखना कि अपने अपने नक्षत्र में हैं या भिन्न भिन्न २ नक्षत्र में ॥ १३ ॥

सूर्यसाधनोदाहरणम् —

उपरोक्त प्रश्न समय (इष्टकाल) में सूर्य उत्ताराभाद्रपदा में हैं । चैत्र कृष्णा ९ शुक्रवार में ५२।३५ घड़ी पल पर उ. भा. में सूर्यका प्रवेश हुआ उस समय से चैत्र शुक्ल ५ सोम (१५।२०) इष्टकाल तक दिनादिक ६।२२।४५ (अर्थात् ६ दिन, २२ घड़ी ४५ पल) यह सूर्यसम्बन्धी भयात काल हुआ । तथा चैत्र शुक्ल ९ शुक्रवार में १९।५० घटी पल पर अग्रिम (रेवती) नक्षत्र में सूर्य का प्रवेश है, इस लिये उ. भा. में सूर्य के प्रवेश समय से रेवती में प्रवेश समय तक अन्तर दिन घटी पल (१३।२७।१५) यह सूर्य का भभोगकाल हुआ । अब चन्द्रमा के साधनवत् सूर्य के भयात दिनादि (६।२२। ४५) को एक जातीय करके ३३७६५ हुआ इसको २७ से गुना किया तो ९११६५५ हुआ, इसमें सूर्यके भभोगदिनादि (१३।२७।१५) के एक जातीय ४८४३५ से भाग दिया लब्धि में तीन स्थान (नक्षत्र, घड़ी पलात्मक) पूर्ववत् ग्रहण किया तो १८।४९।२० हुआ । भागक्रिया प्रदर्शन— [१६ पृष्ठ में देखो]

हर　　भाज्य　　लब्धि

४८४३५) ९११६५५ (१८ = नक्षत्र
　　　　४८४३५
　　　　———
　　　　४२७३०५
　　　　३८७४८०
　　　　———
　　　　३९८२५ = नक्षत्र शेष
　　　　× ६०
　　　　———
४४८३५) २३८९५०० (४९ = घटी
　　　　१९३७४०
　　　　———
　　　　४५२१००
　　　　४३५९१५
　　　　———
　　　　१६१८५ = घटी शेष
　　　　× ६०
　　　　———
४८४३५) ९७११०० (२० = पल
　　　　९६८७००
　　　　———
　　　　२४०० = शेष का त्याग

इस प्रकार नक्षत्रादि लब्धि १८।४९।२० में इष्टकालिक सूर्य के भुक्त पूर्वाभाद्र तक की संख्या २५ अश्विनी से गिनकर जोड़ दिया तो ४३।४९।२० हुआ। यह नक्षत्र संख्या (२७) से अधिक है इस लिये २७ से तष्टित करने से शेष १६।४९।२० स्पष्ट सूर्य नक्षत्र हुआ, अर्थात् १६ वां विशाखा गत हुआ, वर्तमान अनुराधा के ४९ घड़ी, २० पल पर स्पष्ट सूर्य हुआ। उपपत्ति पूर्ववत् स्पष्ट है।

'अश्वीश' इत्यादि १० वां श्लोक के अनुसार सूर्य अपने नक्षत्र में हुआ। यहां सूर्य और चन्द्रमा दोनों सूर्य के नक्षत्र में पड़े इसलिये "चन्द्रऋक्षे यदार्केन्दू" इत्यादि १४ वां श्लोकके अनुसार शल्य की सम्भावना हुई ॥ १३ ॥

२७ नक्षत्र के बीच में अभिजित् का मान—

विश्वेदेवान्त्यतुर्यांशः श्रुतिपञ्चदशांशकः।
आदिमश्चाभिजिन्मानं ज्ञेयं दैवविदा सदा ॥

अर्थ—उत्तराषाढ़ के अन्तिम चरण और श्रवण के आदिम १५ वाँ भाग अभिजित् नक्षत्र का मान है। गणना करने में नक्षत्र की संख्या २७ ही लेना चाहिये।

अथ द्रव्यादिज्ञानम्—

चन्द्रऋक्षे यदार्केन्दू तदाऽस्ति निश्चितं निधिः।
भानुऋक्षे स्थितौ तौ चेत्तदा शल्यं न चान्यथा॥१४॥

अन्वयः—यदा अर्केन्दू चन्द्रऋक्षे 'स्याताम्' तदा निश्चितं निधिः 'अस्ति' तौ (अर्केन्दू) चेत्=यदि भानुऋक्षे स्थितौ तदा शल्यं (अस्तीति ज्ञेयम्) अन्यथा न=न किञ्चिदित्यर्थः ॥ १४ ॥

अर्थ—उपरोक्त विधि से साधित सूर्य और चन्द्रमा दोनों चन्द्रमा के नक्षत्र में हों तो निश्चय निधि (द्रव्य) है, और यदि सूर्य और चन्द्रमा दोनों सूर्य के नक्षत्र में हों तो शल्य है ऐसा समझना। अन्यथा कुछ भी नहीं कहना ॥ १४ ॥

स्वस्वभे द्वितयं ज्ञेयं नास्ति किञ्चिद्विपर्यये।
स्थितं न लभते द्रव्यं चन्द्रे क्रूरग्रहान्विते ॥१५॥

अन्वयः—तौ यदि स्वस्वभे स्थितौ तदा द्वितयं (निधिः शल्यं च) ज्ञेयम्। विपर्यये (सूर्यभे चन्द्रः, चन्द्रभे सूर्यस्तदा) किञ्चिन्नास्ति। चन्द्रे क्रूरग्रहान्विते स्थितं अपि द्रव्यं न लभते ॥ १५ ॥

अर्थ—यदि सूर्य और चन्द्रमा अपने अपने नक्षत्र में हों तो निधि और शल्य दोनों कहना। यदि विपर्यय (सूर्य के नक्षत्र में चन्द्र, चन्द्र के नक्षत्र में सूर्य हों) तो कुछ भी नहीं कहना। यदि चन्द्रमा पाप ग्रह से युक्त हो तो स्थित द्रव्य का भी लाभ नहीं होता है ॥ १५ ॥

विशेष—

यत्र कोष्ठे स्थितश्चन्द्रस्तत्र कोष्ठे निधिं वदेत्।
यत्र कोष्ठे स्थितः सूर्यस्तत्र शल्यं विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—तात्कालिक साधित चन्द्रमा जिस कोष्ठ में हो जमीन में उसी कोष्ठ में निधि (द्रव्य) कहना। और जिस कोष्ठ में सूर्य हों उस कोष्ठ में शल्य कहना ॥

शुभक्षेत्रे गते चन्द्रे द्रव्यलाभो न संशयः।
पापक्षेत्रे न लाभः स्याज्ज्ञातव्यं दैवविद्वरैः ॥१६॥

अन्वयः—चन्द्रे शुभक्षेत्रे गते सति द्रव्यलाभः स्यात्, अत्र संशयः न। चन्द्रे पापक्षेत्रे गते सति न लाभः स्यात्, इति दैवविद्वरैः ज्ञातव्यम् ॥ १६ ॥

अर्थ—चन्द्रमा शुभग्रह की राशि में हो तो निश्चय द्रव्य लाभ हो इसमें संशय नहीं है। यदि पाप ग्रह की राशि में चन्द्रमा हो तो द्रव्यलाभ नहीं होता है ॥ १७ ॥

विशेषः—

राशिस्वामिनः—

सिंहस्याधिपतिः सूर्यः कर्कस्याधिपतिः शशी।
मेषवृश्चिकयोर्भौमो बुधो मिथुनकन्ययोः॥
धनुर्मीनपतिर्जीवः शुक्रो वृषतुलापतिः।
एवं चाधिपतिः प्रोक्तः शनिर्मकरकुम्भयोः॥

अर्थ—सूर्य सिंह के, चन्द्रमा कर्क के, मंगल मेष और वृश्चिक के, बुध मिथुन और कन्या के, बृहस्पति धनु और मीन के, शुक्र वृष और तुला के, शनि मकर और कुम्भ के स्वामी हैं।

पाप और शुभग्रह—

क्षीणचन्द्रार्कभौमार्क्यः पापास्तत्संयुतो बुधः।
पापोऽन्यथा शुभो ज्ञेयस्तथा चान्ये शुभग्रहाः॥

अर्थः—क्षीणचन्द्रमा, सूर्य, मंगल, शनि ये पापग्रह हैं। यदि इनसे युक्त बुध हो तो वह भी पापग्रह कहलाता है, अन्यथा शुभ ग्रह कहलाता है, अन्य (पूर्ण चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र) ये शुभग्रह हैं॥

पुष्टे चन्द्रे भवेन्मुद्रा क्षीणे चन्द्रेऽल्पको निधिः।
ग्रहदृष्टिवशात्सोऽपि विज्ञेयो नवधा बुधैः॥१७॥

अन्वयः—पुष्टे चन्द्रे मुद्रा भवेत्, क्षीणे चन्द्रे सति, अल्पकः निधिः भवेत् सोऽपि ग्रहदृष्टिवशात् बुधैः=पण्डितैः नवधा विज्ञेयः॥१७॥

अर्थ—चन्द्रमा पुष्टबल हो तो मुद्रा (राजमुद्रा=रुपया) आदि, यदि चन्द्रमा क्षीणबल हो तो थोड़ा द्रव्य कहना। उसमें भी नवों ग्रह की दृष्टि वश से नव प्रकार के द्रव्य होते हैं॥ १७॥

ग्रहदृष्टिचक्रम्—

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	
३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०		१ चरण
९।५	५।९	५।९	५।९		५।९	५।९	२ चरण
४।८	४।८		४।८	४।८	४।८	४।८	३ चरण
७	७	४।८ ७	७	७ ९।५	७	७	४ चरण

अपने स्थान से उक्त स्थानों में दृष्टि होती है।

हेम तारं च ताम्रारं रत्नं कांस्यायसं त्रपु।
नागं चन्द्रे विजानीयाद् भास्करादिग्रहेक्षिते ॥१८॥

अन्वयः—भास्करादिग्रहेक्षिते चन्द्रे सति क्रमेण हेम, तारं, ताम्रारं, रत्नं, कांस्यायसं, त्रपु, नागं च विजानीयात् ॥ १८ ॥

अर्थः—यदि चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि हो तो सुवर्ण, दैनिक चन्द्र की दृष्टि से मोती, मंगल की दृष्टि हो तो ताँबा, बुध की दृष्टि हो तो पीतल, बृहस्पति की दृष्टि हो तो रत्न, शुक्र की दृष्टि हो तो कांसा, शनि की दृष्टि हो तो लोहा, राहु की दृष्टि हो तो राँगा, और केतु की दृष्टि हो तो शीशा कहना ॥ १८ ॥

मिश्रैर्मिश्रं भवेद्द्रव्यं शून्यं दृष्टिविवर्जिते।
सर्वग्रहेक्षिते चन्द्रे निर्दिष्टोऽसौ महानिधिः॥१९॥

अन्वयः— मिश्रग्रहैः दृष्टे मिश्रं द्रव्यं ज्ञेयम्, दृष्टिविवर्जिते = ग्रह-दृष्टिविवर्जिते चन्द्रे शून्यं ज्ञेयम्। सर्वग्रहेक्षिते चन्द्रे, असौ महानिधिः निर्दिष्टः ॥ १९ ॥

अर्थ—मिश्र (अर्थात् एक से अधिक) ग्रह की दृष्टि हो तो उन ग्रहों के जो द्रव्य कहे हैं वे सब समझना, यदि किसी ग्रह की दृष्टि चन्द्रमा पर न हो और चन्द्र क्षीणबली हो तो शून्य (कुछ भी नहीं) समझना, यदि सब ग्रह की दृष्टि हो तो महानिधि (बहुत द्रव्य) समझना ॥ १९ ॥

हेम रूप्यं च ताम्रारं पाषाणं मृन्मयायसम्।
सूर्यादिगृहगे चन्द्रे द्रव्यभाण्डं प्रजायते ॥२०॥

अन्वयः—चन्द्रे सूर्यादिगृहगे सति क्रमेण, हेम, रूप्यं, च पुनः ताम्रारं (ताम्रं, आरं) पाषाणं, मृन्मयायसम् (मृन्मयं, आयसम्) एवं सप्तविधं द्रव्यभाण्डं = द्रव्यभाजनं प्रजायते ॥ २० ॥

अर्थः—चन्द्रमा सूर्य की राशि में हो तो सोने के बर्तन में द्रव्य है, अपनी राशि में हो तो रूपे के पात्र में, मंगल की राशि में हो तो ताँबे के पात्र में, बुध की राशि में हो तो पीतल के पात्र में, बृहस्पति की राशि में हो तो पत्थर के पात्र में, शुक्र की राशि में हो तो मिट्टी के पात्र में, शनि की राशि में हो तो लोहे के पात्र में द्रव्य समझना ॥ २० ॥

द्रव्य कितने हाथ नीचे जमीन में है—

भुक्तराश्यंशमानेन भूमानं कामिकैः करैः।
नीचे द्विघ्नं परे नीचे जलस्थोऽसौ भवेन्निधिः ॥२१॥

अन्वयः—भुक्तराश्यंशमानेन कामिकैः करैः भूमानं (कल्पयेत् इति शेषः) चन्द्रे नीचे सति द्विघ्नं = द्विगुणितं ज्ञेयम्, परे नीचे = परमे नीचे चन्द्रे असौ निधिः जलस्थः भवेत् ॥ २१ ॥

अर्थ—चन्द्र राशि के जितने अंश गत हो गये हों उस हिसाब से कामिक (द्रव्य के मालिक) के हाथ से भूमान कल्पना करै, अर्थात् चन्द्रमा के जितने अंश भुक्त हो गये हों उतने हाथ नीचे, अथवा जितने नवांशगत हो उतने हाथ नीचे, जमीन में द्रव्य रहता है। यदि चन्द्रमा नीच राशि (वृश्चिक) के हों तो जितने अंश, या नवांश भुक्त हो उससे द्विगुणित हस्त नीचे द्रव्य रहता है। यदि चन्द्रमा परम नीच (वृश्चिक के ३ तीसरा अंश) में हो तो जमीन के नीचे जल में द्रव्य रहता है ॥ २१ ॥

ग्रहों के उच्चनीच समझने का चक्र—

ग्र.	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	बृह.	शुक्र.	शनि
उच्च	मे.	वृ	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला.
रा.अं.	० १०	१ ३	९ २८	५ १५	३ ५	११ २७	६ २०
नीच	तु.	वृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष
रा.अं.	६ १०	७ ३	३ २८	११ १५	९ ५	५ २७	० २०

स्वोच्चस्थे तूर्ध्वगं द्रव्यं नवमांशक्रमेण च।
परमोच्चे स्थिते चन्द्रे भित्तिस्थमृक्षसङ्क्रमे ॥२२॥

अन्वयः—चन्द्रे स्वोच्चस्थे तु नवमांशक्रमेण ऊर्ध्वगं द्रव्यं (ज्ञेयम्)। परमोच्चे स्थिते, तथा ऋक्षसंक्रमे भित्तिस्थं द्रव्यं (ज्ञेयम्)॥ २२॥

अर्थः—चन्द्रमा अपनी उच्च राशि में हो तो नवमांश के क्रम से जहाँ द्रव्य गड़ा हो वह वहाँ से ऊपर है ऐसा समझना। यदि परम उच्च (वृष के ३ अंश में) चन्द्रमा हो वा नक्षत्र सन्धि में हो तो ज़मीन से भी ऊपर भिति (दिवाल) में द्रव्य समझना॥ २२॥

द्रव्यसंख्याज्ञान—

चन्द्रभुक्तांशमानेन द्रव्यसंख्या विधीयते।
तस्या दशगुणा वृद्धिः षड्वर्गेन्दुबलक्रमात्॥२३॥

अन्वयः—चन्द्रभुक्तांशमानेन द्रव्यसंख्या विधीयते, षड्वर्गेन्दुबलात् तस्याः = संख्यायाः दशगुणा वृद्धिः (भवति)॥ २३॥

अर्थः—चन्द्रमा जितने अंश भोग कर चुके हों उतनी ही द्रव्य की संख्या समझना। तथा चन्द्रमा के षड्वर्ग बल के क्रमसे संख्या की दश गुना वृद्धि होती है। अर्थात् गृह, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश ये ६ षड्वर्ग कहलाते हैं। इनमें किसी एकमें हो तो भुक्तांश के हिसाब से जो संख्या हो उसे १० गुना करना, दो वर्ग में हो तो १०० सौ गुना, ३ वर्ग में १००० से, ४ वर्ग में हो तो १०००० से, ५ वर्ग में हो तो १००००० से, ६ छवो वर्ग अपने ही हो तो १०००००० से संख्या को गुना कर द्रव्य का प्रमाण कहना॥ २३॥

द्रव्य के अधिष्ठायक देवता—

अधिष्ठितं भवेद् द्रव्यं यत्र चन्द्रो ग्रहान्वितः ।
तदधिष्ठायको ज्ञेयो भास्करादिग्रहैः क्रमात् ॥२४॥

अन्वयः—यत्र चन्द्रो ग्रहान्वितः 'वर्तते' तत्र अधिष्ठितं द्रव्यं ज्ञेयम् । भास्करादिग्रहैः 'युते चन्द्रे' क्रमात् तदधिष्ठायको ज्ञेयः ॥२४॥

अर्थः—जिस स्थान (अहिचक्र के कोष्ठ) में चन्द्रमा किसी ग्रह से युक्त बैठा हो उस स्थान में अधिष्ठित द्रव्य समझना । और सूर्यादि ग्रह से चन्द्रमा युक्त हो तो क्रम से नीचे लिखे हुए देवता उस द्रव्य के अधिष्ठायक होते हैं ॥ २४ ॥

यथा—

†ग्रहं ❀मुग्धग्रहं चैव क्षेत्रपालं च मातृकाः ।
दीपेशं भीषणं रुद्रं यक्षं नागं विदुः क्रमात् ॥२५॥

अन्वयः—(सूर्यादिग्रहैर्युते चन्द्रे) ग्रहं, मुग्धग्रहं, क्षेत्रपालं, मातृकाः, दीपेशं, भीषणं, रुद्रं यक्षं, नागं, इति क्रमात (द्रव्याधिष्ठायकं) विदुः ॥ २५ ॥

अर्थ—चन्द्रमा सूर्य से युक्त हो तो ग्रह, दैनिक चन्द्रमा से युक्त हो तो मुग्धग्रह, मंगलसे युत हो तो क्षेत्रपाल, बुध से युत हो तो मातृका, बृहस्पति से युत हो तो दीपेश, शुक्र से युत हो तो भीषण, शनि से युत हो तो रुद्र, राहु से युत हो तो यक्ष, केतु से युत हो तो नाग ये द्रव्य के अधिष्ठायक कहे गये हैं ॥२५॥

---

† ग्रह = नवग्रह । ❀मुखग्रहं चैव इति पाठान्तरम् । मुखग्रह = सूर्य ।

अधिष्ठायक देवता की पूजा का विधान—

ग्रहे होमः प्रकर्तव्यः मुग्धे नारायणी बलिः ।
क्षेत्रपाले सुरामांसं मातृकासु महाबलिः ॥२६॥

अन्वयः—ग्रहे अधिष्ठायके सति होमः प्रकर्तव्यः, मुग्धे नारायणी बलिः, क्षेत्रपाले सुरामांसं (देयम्) मातृकासु महाबलिः ॥ २६ ॥

अर्थ—यदि द्रव्य के अधिष्ठायक ग्रह हों तो होम करना चाहिये, मुग्ध हो तो नारायणी बलि देना चाहिये, क्षेत्रपाल हो तो मदिरा और मांस देना चाहिये, मातृका हो तो महाबलि करना चाहिये ॥ २६ ॥

दीपेशे दीपजा पूजा भीषणे भीषणार्चनम् ।
रुद्रे च रुद्रजो जाप्यो यक्षे यक्षादिशान्तयः॥२७॥

अन्वयः—दीपेशे दीपजा पूजा, भीषणे भीषणार्चनम्, रुद्रे च रुद्रजो जाप्यो, यक्षे यक्षादिशान्तयः कार्याः ॥ २७ ॥

अर्थ—दीपेश द्रव्य के अधिष्ठाता हो तो दीपपूजा, भीषण हो तो भीषण की पूजा, रुद्र हो तो रुद्रजप (रुद्रीपाठ आदि) यक्ष हो तो यक्ष की शान्ति करै ॥ २७ ॥

नागे नागगणाः पूज्या गणनाथेन संयुताः ।
लक्ष्मीं धरादितत्त्वानि सर्वकार्येषु पूजयेत् ॥२८॥

अन्वयः—नागे अधिष्ठायके सति गणनाथेन संयुक्ता नागगणाः पूज्याः । तथा सर्वकार्येषु लक्ष्मीं धरादितत्त्वानि पूजयेत् ॥ २८ ॥

अर्थ—नाग द्रव्याधिष्ठायक हों तो गणेश सहित नागगण की

पूजा करै, तथा सब कार्यों में श्रीलक्ष्मी तथा धरादिक पाँचों तत्त्व (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश) की पूजा अवश्य करै ॥२८॥

एवं कृत्वा विधानेन निधिः साध्योऽपि सिद्ध्यति।
निधिं प्राप्ता नरा लोके वन्दनीया न संशयः ॥२९॥

अन्वयः--विधानेन एवं कृत्वा साध्यः निधिः सिद्ध्यति। अपि = निश्चयेन। तथा निधिं प्राप्ताः नराः लोके वन्दनीयाः भवन्ति, अत्र संशयः न ॥ २९ ॥

अर्थः—विधि पूर्वक इस प्रकार द्रव्याधिष्ठायक की पूजा करके साध्य निधि की अवश्य सिद्धि होती है। तथा निधिको जानने वाले लोक में वन्दनीय होते हैं ॥ २९ ॥

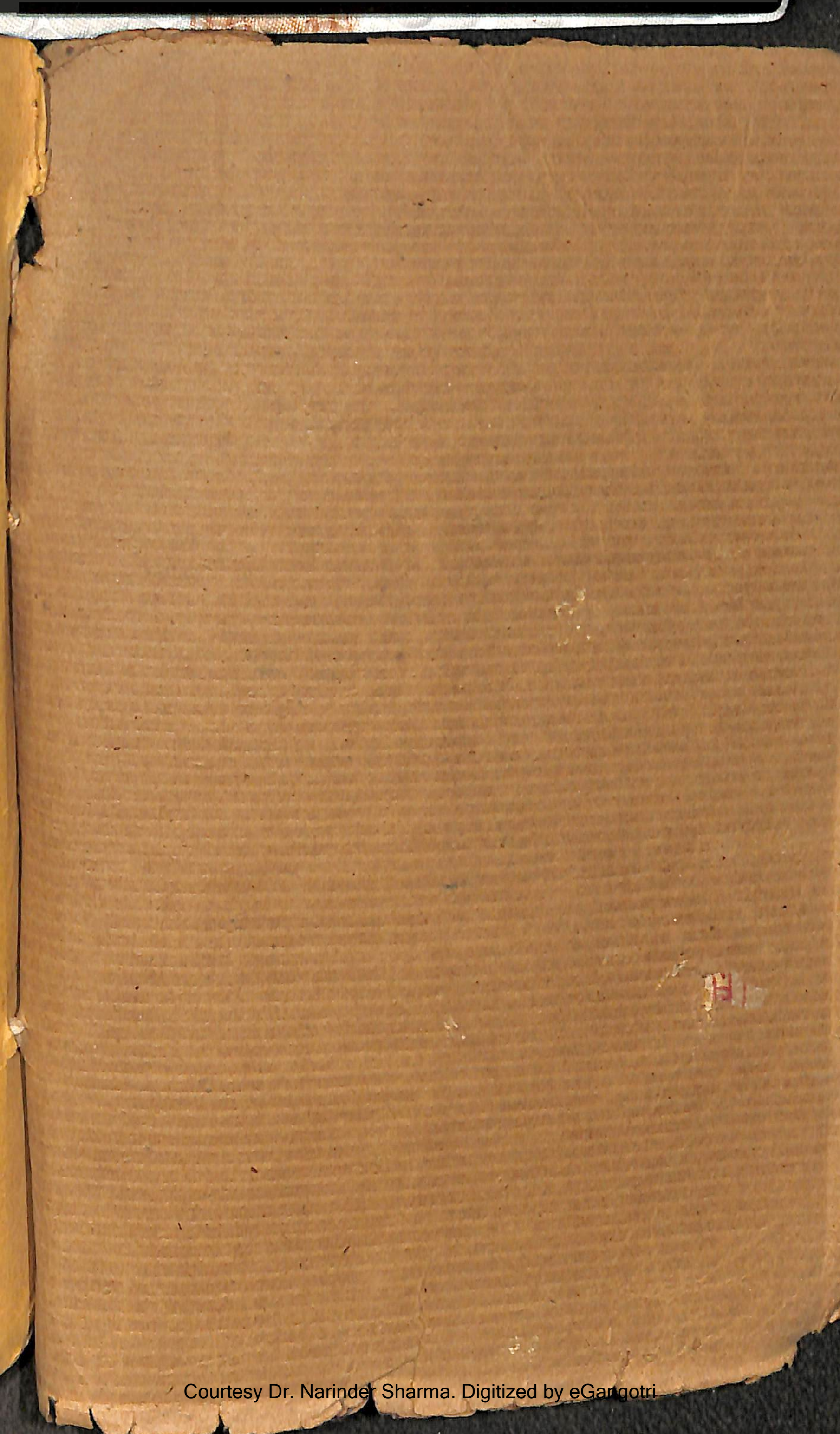
पद्मासने चन्द्रातपेन "ऐं क्लीं हूँ वद वद वाग्वादिनि स्वाहा" इति मन्त्रं षण्मासपर्यन्तं त्रिसन्ध्यं जपेत् तदा निधिप्राप्तिर्भवति।

इति ब्रह्मयामलीयस्वरोदये "अहिबलचक्रम्" समाप्तम्।

उपरोक्त विधि से मन्त्र को ६ महीने तक जपने से द्रव्यप्राप्ति होती है।

चौगमाग्रामवास्तव्य—श्रीसीतारामशर्मणा।
अहिचक्रे कृता टीका समाप्तेयं सुबोधिनी॥

इति ज्यौतिषाचार्य—पण्डित--श्रीसीतारामशर्मकृता
सुबोधिनी टीका समाप्ता॥ शुभम्॥



कर्मसिंह

1413 III

سنہ کتک سنگھ

اسوں پروشٹہ 31 دن بدھوار

رات کے پانچ بج کر ۷ منٹ

سمت ۲۰۵۷ احمد جیل ۱۱

عبداللہ

